<u>प्रतिवेद्य</u>

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

फौज़दारी अपीलीय अधिकारिता

<u>फौज़दारी अपील संख्या 1340 2019</u>
(एस.एल.पी.(फौज़दारी) संख्या 7523/2019 से उत्पन्न)

पी. चिदंबरम .....अपीलार्थी

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय .....प्रत्यर्थी

<u>निर्णय</u>

<u>आर. भानुमथी, (न्यायाधीश)</u>

अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफ.आई.पी.बी.) द्वारा आई.एन.एक्स. मीडिया को रु.4.62 करोड़ की अनुमोदित आमद के विपरीत रु.305 करोड़ के बराबर विदेशी निवेश प्राप्त करने हेतु दी गई स्वीकृति में व्याप्त कथित असंगतियों से संबंधित है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा धारा 120ख भा.दं.सं. सहपठित धारा 420 भा.दं.सं., भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 व धारा 13(2) सहपठित 13(1)(घ) के अंतर्गत दर्ज मामले आर.सी. संख्या 220/2017-E-0011 में अपीलार्थी की अग्रिम ज़मानत हेतु याचिका को खारिज कर दिया था। आक्षेपित आदेश दिनांकित 20.08.2019 के माध्यम से उच्च न्यायालय ने प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दर्ज मामले ECIR संख्या

07/HIU/2017 जो अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3 व 4 के अंतर्गत दंडनीय है, में भी अग्रिम ज़मानत प्रदान करने से इंकार कर दिया था।

3. अपीलार्थी की शिकायत यह है कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने मामले को दिनांक 21.08.2019 को उच्चतम न्यायालय में सूचीबद्ध कराने का प्रयास किया था; किंतु उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश पर रोक आदेश प्राप्त करने हेतु अपीलार्थी उच्चतम न्यायालय में एक त्वरित सुनवाई नहीं पा सका था। दिनांक 21.08.2019 की रात में अपीलार्थी को सीबीआई द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया था। क्योंकि अपीलार्थी को सीबीआई अभियोग में गिरफ्तार किया गया था व अभिरक्षा में सौंप दिया गया था, *श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया व अन्य बनाम पंजाब राज्य* **(1980) 2 एस.सी.सी. 565** में संविधान पीठ के निर्णय को देखते हुए, अपीलार्थी गिरफ्तार किए जाने के उपरांत अग्रिम ज़मानत की मांग नहीं कर सकता। तदानुसार, सीबीआई अभियोग से संबंधित अपीलार्थी की ओर से दायर एस.एल.पी.(फौजदारी) संख्या 7525/2019 को आदेश दिनांकित 26.08.2019 के द्वारा निष्प्राय बताकर इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि अपीलार्थी को पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया था व अभिरक्षा में भेज दिया गया था। इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को स्वयं के लिए विधि अनुसार उपचार तलाशने के लिए स्वतंत्रता प्रदान की गई।

4. दिनांक 15.05.2017 को, सीबीआई द्वारा अभियुक्तों - (i) आई.एन.एक्स. मीडिया इसकी निदेशक इंद्राणी मुखर्जी के माध्यम से; (ii) आई.एन.एक्स. न्यूज़ इसके निदेशक श्री प्रतिम मुखर्जी के माध्यम से; (iii) श्री कार्ति पी. चिदंबरम; (iv) चैस मैनेजमेंट सर्विसिज़ इसके निदेशक श्री कार्ति पी. चिदंबरम व अन्य के माध्यम से; (v) ऐडवांटेज स्ट्रैटेजिक कंसल्टिंग इसकी निदेशक कु. पद्मा विश्वनाथन @ पद्मा भास्कररमन व अन्य के माध्यम से; (vi) वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, के कुछ अज्ञात अधिकारी/कर्मचारी; तथा (vii) अन्य अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध आई.एन.एक्स. मीडिया को अनुमोदित रु. 4.62 करोड़ के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मुकाबले रु. 305 करोड़ की विदेशी पूंजी प्राप्त करने हेतु एफ.आई.पी.बी. को दी गई स्वीकृति में अनियमितताओं (एफ.डी.आई.) के लिए धारा 120ख भा.दं.सं. सहपठित 420 भा.दं.सं., भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 व धारा 13(2) सहपठित 13(1)(घ) के अंतर्गत एफ.आई.आर. संख्या 220/2017-E-0011 दर्ज की गई।

5. कहे गए अपराध में अभियोजन का मामला यह है कि, 2007 में आई.एन.एक्स. मीडिया प्रा.लि. ***विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफ.आई.पी.बी.)*** के सम्मुख निर्गमित इक्विटी पूंजी के 46.216 प्रतिशत तक एफ.डी.आई. हेतु स्वीकृति मांगने के लिए प्रस्तुत हुआ। एफ.आई.पी.बी. के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव को भेजते समय, प्रस्तावित मामले को इसके प्रत्यक्ष मूल्य पर लेते हुए

एफ.डी.आई. का रु. 4,62,16,000/- तक होने का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख इसमें आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा किया गया था। दिनांक 18.05.2007 को आयोजित की गई अपनी बैठक में एफ.आई.पी.बी. द्वारा आई.एन.एक्स मीडिया के प्रस्ताव की अनुशंसा की गई जो कि वित्त मंत्री- अपीलार्थी की स्वीकृति के अधीन थी। बैठक में बोर्ड ने आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा आई.एन.एक्स न्यूज़ में डाउनस्ट्रीम निवेश को अनुमोदित नहीं किया था। अनुमोदन की शर्तों, एफ.आई.पी.बी. की संस्तुतियों का उल्लंघन करते हुएः- (i) आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा एफ.आई.पी.बी. के विशेष अनुमोदन के बिना ही आई.एन.एक्स न्यूज़ की पूंजी में 26% तक डाउनस्ट्रीम निवेश किया गया जिसमें उसी विदेशी निवेशक द्वारा अप्रत्यक्ष विदेशी निवेश शामिल है (ii) रु. 800/- से अधिक प्रति शेयर के अधिमूल्य पर विदेशी निवेशकों को शेयर जारी कर आई.एन.एक्स. मीडिया में रु. 305 करोड़ से अधिक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश उत्पन्न किया गया जो कि अनुमोदित रु. 4.62 करोड़ की विदेशी आमाद का स्पष्ट उल्लंघन है।

6. आई.एन.एक्स. मीडिया के द्वारा मै. ऐडवांटेज स्ट्रैटेजिक कंसल्टिंग प्रा.लि. (ए.एस.सी.पी.एल.) के पक्ष में बनाए गए रु. 10,00,000/- की राशि के चैक के आधार पर एक शिकायत प्राप्त होने पर, आयकर विभाग की अन्वेषण शाखा मामले की जाँच हेतु आगे बढ़ी तथा एफ.आई.पी.बी. से प्रासंगिक जानकारी मांगी गई, जिसने बदले में, अपने पत्र दिनांकित 26.05.2008 द्वारा आई.एन.एक्स

मीडिया से स्पष्टीकरण मांगा जिसने यह कहकर अपनी गतिविधियों को न्यायसंगत ठहराया कि डाउनस्ट्रीम निवेश अधिकृत किया जा चुका है व यह कि उसको एफ.आई.पी.बी. के अनुमोदन के अनुरूप ही बनाया गया था। अभियोजन की ओर से यह आरोप लगाया गया है कि परिस्थिति से बिना किसी दांडिक प्रावधान के निकलने के लिए, आई.एन.एक्स मीडिया ने श्री कार्ति चिदंबरम, प्रवर्तक निदेशक, चैस मैनेजमेंट सर्विसिज़ प्रा.लि. व अपीलार्थी-तत्समय भारत के वित्तमंत्री के साथ एक आपराधिक षड़यंत्र रचा। आई.एन.एक्स. मीडिया ने 26.06.2008 दिनांकित पत्र के माध्यम से यह कहते हुए अपनी गतिविधियों को न्यायसंगत ठहराने का प्रयास किया कि डाउनस्ट्रीम निवेश को स्वीकृत किया जा चुका है व उसको अनुमोदन के अनुरूप किया गया था।

7. इसके अतिरिक्त एफ.आई.आर. में यह आरोप लगाया गया है कि श्री कार्ति चिदंबरम द्वारा चैस मैनेजमेंट सर्विसिज़ के माध्यम से आई.एन.एक्स. मीडिया को दी गई सेवाओं के लिए ए.एस.सी.पी.एल. द्वारा आई.एन.एक्स. मीडिया से बीजकों पर भुगतानों के रूप में प्रतिफल प्राप्त किए गए थे। एफ.आई.आर. में यह आरोप लगाया गया है कि चैस मैनेजमेंट सर्विसिज़ द्वारा दी गई सेवाओं के लिए ए.एस.सी.पी.एल. के नाम पर बीजक बनवाने के पीछे का एकमात्र उद्देश्य श्री कार्ति चिदंबरम की पहचान को कम से कम उस दिन जिस दिन बीजक बनाए गए व भुगतान प्राप्त किए गए छुपाना था। यह कहा गया है कि श्री कार्ति चिदंबरम

चैस मैनेजमेंट सर्विसिज के प्रवर्तक, निदेशक थे जबकि ए.एस.सी.पी.एल को उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित किया जा रहा था। यह आरोप लगाया गया है कि लगभग रु. 3.50 करोड़ की राशि के बीजकों को झूठे तौर पर आई.एन.एक्स. मीडिया के पक्ष में अन्य कंपनियों के नाम पर बनवाया गया था जिनमें श्री कार्ति चिदंबरम का हित प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निहित था। यह आरोप लगाया गया है कि ऐसे बीजकों को झूठे तौर पर मीडिया सामग्री, बाजार अनुसंधान के संबंध में परामर्शदाता संस्था के अधिग्रहण को तैयार करने हेतु, ऑडियो-वीडियो इत्यादि की विभिन्न विधाओं की सामग्री के अधिग्रहण हेतु बनवाया गया था। यह आरोप लगाया गया है कि आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा अपने अभिलेख में ए.एस.सी.पी.एल. को रु. 10,00,000/- के भुगतान के मकसद का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है "एफ.आई.पी.बी. अधिसूचना व स्पष्टीकरण हेतु प्रबंधन परामर्श कार्य शुल्क"। यह आरोप लगाते हुए कि उचित कार्य में चूक व अनुचित कार्य करना प्रथम दृष्ट्या अपराध होने का खुलासा करता है, सीबीआई द्वारा दिनांक 15.05.2017 को आर.सी. संख्या 220/2017-E-0011 में एक एफ.आई.आर. पूर्वोक्त अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 120ख भा.दं.सं. सहपठित 420 भा.दं.सं., भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, की धारा 8 व धारा 13(2) सहपठित 13(1)(घ) के अंतर्गत दर्ज की गई।

8. सीबीआई द्वारा दर्ज उक्त एफ.आई.आर. के आधार पर प्रवर्तन निदेशालय के द्वारा पूर्वोक्त अभियुक्तों के विरुद्ध कथित रूप से अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 (अ.नि.अ.), की धारा 3 व 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध करने के लिए ECIR संख्या 07/HIU/2017 में एक मामला दर्ज किया गया। 2017 में मामले के दर्ज होने के बाद से, ज़मानत की मांग करते हुए विभिन्न प्रक्रियाएँ अपनायी गई एवं कई अन्य प्रक्रियाएँ लंबित हैं जो कि श्री कार्ति चिदंबरम व अन्य अभियुक्तों द्वारा दायर की गई थी। अंततः दिनांक 23.03.2018 को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा श्री कार्ति चिदंबरम को सीबीआई द्वारा दर्ज आई.एन.एक्स. मामले में ज़मानत प्रदान की गई। इसके बाद, अपीलार्थी दिल्ली उच्च न्यायालय के सम्मुख दोनों ही सीबीआई मामले व प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दर्ज अर्थशोधन के मामले में अग्रिम ज़मानत की मांग करने हेतु उपस्थित हुआ। दिनांक 25.07.2018 को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को दोनों ही मामलों में हिरासत से अंतरिम सुरक्षा प्रदान कर दी गई तथा उसी को 20.08.2019 तक के लिए बढ़ा दिया गया- वह तारीख़ जब उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम ज़मानत प्रदान करने से इंकार करते हुए अपीलार्थी की याचिका खारिज कर दी गई थी।

9. उच्च न्यायालय द्वारा यह कहते हुए कि, *"यह अर्थशोधन का एक स्पष्ट मामला है"* अपीलार्थी को अग्रिम ज़मानत प्रदान करने से इंकार करते हुए आवेदन को खारिज कर दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि, *"यह*

अर्थशोधन का एक स्पष्ट मामला है"। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह मानते हुए कि, "*अपीलार्थी द्वारा बरती गई कथित अनियमितताएँ प्रथम दृष्टया अपीलार्थी को हिरासत-पूर्व ज़मानत इंकार करने के लिए मामला बनाती हैं*" अग्रिम ज़मानत हेतु आवेदन को खारिज कर दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा यह भी माना गया था कि, "*अपराध की गंभीरता को देखते हुए तथा जब वह न्यायालय द्वारा उसको प्रदान किए गए सुरक्षात्मक कवच में था अपीलार्थी द्वारा उससे किए गए प्रश्नों के दिए गए गोलमोल उत्तर दो ऐसे कारण हैं जो अपीलार्थी को हिरासत-पूर्व ज़मानत नामंज़ूर करने को पुष्ट करते हैं* "। असंतुष्ट होने के कारण अपीलार्थी द्वारा यह अपील की गई है।

10. एक लम्बी कालावधि तक हुई कई सुनवाइयों पर विस्तृत तर्कों को सुना गया। यह अनुरोध करने के लिए कि अपीलार्थी अग्रिम ज़मानत की सुविधा प्राप्त करने का अधिकारी है, अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमान कपिल सिब्बल एवं श्रीमान अभिषेक मनु सिंघवी द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित जीवन व स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर सूक्ष्म तर्क प्रस्तुत किए गए। विभिन्न पहलुओं पर बहस की गई जैसे - न्यायालय प्रतिवादी-प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अपीलार्थी की अभिरक्षा प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत सामग्रियों का अवलोकन कर सकता है या नहीं जबकि तीन तारीखों 19.12.2018, 01.01.2019, व 21.01.2019 पर अपीलार्थी से की गई पूछताछ के दौरान उसका इन दस्तावेज़ों

से सामना नहीं कराया गया था। अपीलार्थी ने प्रवर्तन निदेशालय द्वारा रिकॉर्ड किए गए अपीलार्थी से किए गए प्रश्नों व अपीलार्थी द्वारा दिए गए उत्तरों की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने हेतु अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किया। उपरोक्त दलीलों का प्रत्युत्तर देते हुए, विद्वान सॉलिसिटर जनरल, श्री तुषार मेह्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अग्रिम ज़मानत को प्रदान करना भारत के संविधान की धारा 21 का भाग नहीं है। श्री तुषार मेहता द्वारा अनुरोध किया गया कि प्रतिवादी-प्रवर्तन निदेशालय द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों व विशिष्ट सूचनाओं को देखते हुए तथा विशेष कानून-अ.नि.अ. के प्रावधानों को देखते हुए, अपीलार्थी से अभिरक्षा में पूछताछ की आवश्यकता है एवं अपीलार्थी अग्रिम ज़मानत की सुविधा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।

<u>विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री कपिल सिब्बल की दलीलें:-</u>

11. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री कपिल सिब्बल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आई.एन.एक्स. एफ.डी.आई. हेतु स्वीकृति का अनुमोदन विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (एफ.आई.पी.बी.), जिसमें छः सचिव सम्मिलित होते हैं, के द्वारा किया गया था तथा अपीलार्थी जो तब वित्त मंत्री थे के द्वारा अनुमोदन सामान्य आधिकारिक क्रियाकलाप के रूप में प्रदान किया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आरोप का मुख्य बिंदु यह है कि आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा आई.एन.एक्स.

न्यूज़ में डाउनस्ट्रीम निवेश की कार्योत्तर स्वीकृति प्राप्त करने हेतु अपीलार्थी के पुत्र श्री कार्ति चिदंबरम के द्वारा एफ.आई.पी.बी. के बोर्ड सदस्यों को प्रभावित करने का प्रयास किया गया; जबकि न तो एफ.आई.पी.बी. के बोर्ड सदस्यों द्वारा और न ही एफ.आई.पी.बी. के अधिकारियों द्वारा अपीलार्थी के पुत्र श्री कार्ति चिदंबरम के विषय में ऐसा कुछ भी कहा गया है कि वे कार्योत्तर स्वीकृति हेतु उनके पास आए व उन्हें प्रभावित किया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि पूरा मामला ए.एस.सी.पी.एल. को भुगतान किए गए पैसों के विषय में आरोप लगाता है और श्री कार्ति चिदंबरम न तो उक्त ए.एस.सी.पी.एल. में शेयर धारक हैं और न ही निदेशक; किंतु प्रवर्तन निदेशालय द्वारा झूठे तौर पर यह आरोप लगया गया है कि श्री कार्ति चिदंबरम कंपनी- ए.एस.सी.पी.एल. को नियंत्रित करते आए हैं। यह दलील दी गई कि अपीलार्थी का उक्त ए.एस.सी.पी.एल. जिसे आई.एन.एक्स मीडिया के द्वारा पैसों का भुगतान किया गया से कोई भी लेना-देना नहीं है।

12. हमारा ध्यान आक्षेपित निर्णय तथा उच्च न्यायालय के सम्मुख कथित रूप से प्रवर्तन निदेशालय के द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्र की ओर ले जाते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रतिवादी द्वारा न्यायालय में दाखिल किये गए पत्र के एक के बाद एक पैरा को “ज्यों का त्यों उदधृत” किया है। यह ज़ोर देकर कहा गया कि उक्त पत्र में

समाहित आरोपों द्वारा पैसों के कथित लेन-देन/हस्तांतरण जैसा कि आक्षेपित आदेश में तालिका के रूप में दिया गया है, को पुख्ता करने का कोई आधार नहीं था।

13. जहाँ तक प्रवर्तन निदेशालय द्वारा सीलबंद लिफाफे में सामग्रियों को सौंपने की मांग का सवाल है, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा कड़ी आपत्ति व्यक्त की गयी व यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रवर्तन निदेशालय अपीलार्थी की अभिरक्षा प्राप्त करने हेतु अचानक से अपीलार्थी की "पीठ-पीछे" न्यायालय के समक्ष दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं कर सकता। प्रवर्तन निदेशालय की उस प्रार्थना हेतु कड़ी आपत्ति व्यक्त की गयी जिसमें न्यायालय से सीलबंद लिफाफे को स्वीकार करने व जाँच के दौरान एकत्रित उन दस्तावेज़ों/सामग्रियों के अवलोकन का अनुरोध किया गया था जो कथित रूप से कंपनियों के नाम से पैसों के प्रवाह व अर्थशोधन को दर्शाती थीं।

14. अपीलार्थी से प्रतिवादी द्वारा तीन तारीखों- 19.12.2018, 01.01.2019 व 21.01.2019, पर पूछताछ की गयी। यहाँ तक जैसा कि उच्च न्यायालय का मानना है कि अपीलार्थी पूछताछ के दौरान "टालमटोल करने वाला" था, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह दलील प्रस्तुत की कि अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादी से उचित सहयोग किया गया तथा प्रतिवादी यह आरोप नहीं लगा सकता कि अपीलार्थी "असहयोगी" था। अपीलार्थी की ओर से, एक आवेदन भी दाखिल किया गया है

जिसमें प्रतिवादी को 19.12.2018, 01.01.2019 व 21.01.2019 को की गयी पूछताछ की प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित करने की मांग की गई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गयी कि प्रतिलिपियाँ यह प्रदर्शित करेगीं कि अपीलार्थी अपनी पूछताछ के दौरान "टालमटोल करने वाला" था या नहीं जैसा कि प्रतिवादी द्वारा आरोप लगया गया है।

15. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अग्रिम ज़मानत के प्रावधान अर्थात धारा 438 दं.प्र.सं. की न्यायसंगत व तर्कसंगत तरीके से व्याख्या करनी होगी और इसके बावजूद, उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम ज़मानत को यांत्रिक रूप से नामंजूर कर दिया गया। इसके अलावा यह दलील प्रस्तुत की गयी कि आरोपित प्रकृति के अपराधों के मामले में, सब कुछ दस्तावेज़ों द्वारा उत्पन्न होता है तथा अपीलार्थी के "टालमटोल करने वाला" होने का सवाल ही नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी दलील प्रस्तुत की गयी कि सह-अभियुक्त श्री कार्ति चिदंबरम व पद्मा भास्कररमन को ज़मानत प्रदान कर दी गयी थी तथा अन्य अभियुक्त इंद्राणी मुखर्जी व श्री प्रतिम मुखर्जी @ पीटर मुखर्जी वैधानिक ज़मानत पर हैं तथा अपीलार्थी समतुल्यता के आधार पर भी ज़मानत का अधिकारी है।

<u>विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अभिषेक मनु सिंघवी की दलीलें:-</u>

16. श्री कपिल सिब्बल की दलीलों को दोहराते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री अभिषेक मनु सिंघवी द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रवर्तन निदेशालय यह नहीं कह सकता कि अपीलकर्ता "असहयोगी" व "टालमटोल करने वाला" था। श्री सिंघवी द्वारा प्रतिलिपियों, जो कि अपीलार्थी से किए गए प्रश्न तथा वे उत्तर हैं, को प्रस्तुत करने हेतु भी ज़ोर दिया गया जो यह दर्शाएंगे कि अपीलार्थी ने प्रश्नों का उचित रूप से उत्तर दिया है या नहीं। *अतिरिक्त जिला दंडाधिकारी, जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला* **(1976) 2 एस.सी.सी. 521**, पर भरोसा जताते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गयी कि प्रतिवादी दस्तावेज़ों को अपीलार्थी के सम्मुख प्रस्तुत किए बिना या जाँच के दौरान एकत्रित दस्तावेज़ों के विषय में अपीलार्थी से पूछताछ किए बिना उन दस्तावेज़ों पर आश्रित नहीं हो सकता। श्री सिब्बल की दलीलों को दोहराते हुए, श्री सिंघवी द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा सीलबंद लिफाफे में न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ों के आधार पर अपीलार्थी की अग्रिम ज़मानत नामंजूर कर दी गई, जो कि न तो अपीलार्थी को कभी दिखाए गए थे और न ही अपीलार्थी का उनसे सामना कराया गया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उक्त घटना वर्ष 2007-08 की है तथा धारा 420 भा.दं.सं. व 120ख भा.दं.सं. तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 वर्ष

2008 में अर्थशोधन निवारण अधिनियम के "अनुसूचित अपराध" का हिस्सा नहीं थीं तथा अधिसूचना दिनांकित 01.06.2009 के द्वारा शामिल की गई थीं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत प्रदत्त सुरक्षा को देखते हुए, एक आपराधिक/दांडिक अधिनियम का कभी भी पूर्वव्यापी प्रयोग नहीं किया जा सकता है। *राव शिव बहादुर सिंह व अन्य बनाम विंध्य प्रदेश राज्य* **ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 394** पर भरोसा जताते हुए, यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी को उस तर्क को ठोस करना होगा कि जिन कार्यों को अपराध के रूप में आरोपित किया गया है वे "अपराध को अंजाम दिए जाने के समय" अपराध थे। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा बलपूर्वक यह कहा गया कि वर्ष 2007-2008 में जब लोप या करण त्रुटि के उक्त कार्यों को किया गया, वे "अनुसूचित अपराध" नहीं थे और इसलिए अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 के अंतर्गत अभियोग सुनवाई योग्य नहीं है।

17. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में हिरासत पूर्व ज़मानत नामंजूर करने के लिए उल्लिखित दो कारणों पर घोर आपत्ति व्यक्त की है, जो हैं (i) अपराध की गंभीरता; (ii) अपीलार्थी "टालमटोल" करने वाला था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि "अपराध की गंभीरता" व्यक्ति या न्यायालय की अनुभूति नहीं हो सकती तथा "अपराध की गंभीरता" का परीक्षण किए गए अपराध हेतु अधिनियम द्वारा निर्धारित दंड को

होना चाहिए। जहाँ तक उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि "अपीलार्थी सवालों के प्रति टालमटोल करने वाला था", विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि जाँच एजेंसी- प्रवर्तन निदेशालय अभियुक्त से अपने मुताबिक उत्तर प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं कर सकती तथा अभियुक्त भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अंतर्गत सुरक्षा का अधिकारी है। *संतोष पुत्र द्वारकादास फफात बनाम महाराष्ट्र राज्य* **(2017) 9 एस.सी.सी. 714** पर विश्वास दर्शाया गया।

<u>विद्वान सॉलिसिटर जनरल, श्रीमान तुषार महता की दलीलें:-</u>

18. उद्देश्यों व कारणों के विवरण तथा अ.नि.अ. की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करते हुए, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई कि भारत वैश्विक समुदाय का हिस्सा है जिसकी जिम्मेदारी है कि वह अर्थशोधन पर प्रभावी अधिनियम द्वारा कार्यवाही करे तथा अ.नि.अ. विभिन्न राष्ट्रों द्वारा की गई एक संयुक्त पहल का परिणाम है। अ.नि.अ के विभिन्न प्रावधानों का वर्णन करते हुए, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह दलील प्रस्तुत की गई कि अर्थशोधन वित्तीय तंत्र व राष्ट्र की वित्तीय प्रामाणिकता के प्रति एक गहरा संकट खड़ा करता है तथा इसका कड़ाई से सामना करना होगा। यह तर्क दिया गया कि अ.नि.अ. अपराध के दो आयाम होते हैं – निर्धारक अपराध व अर्थशोधन। अर्थशोधन अ.नि.अ. की धारा 4 सहपठित धारा 3 के अंतर्गत एक भिन्न व स्वतंत्र अपराध है।

19. विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अ.नि.अ. की धारा 19 के अंतर्गत, विशिष्ट अधिकारी, अधिकार में मौजूद सामग्री के आधार पर, यह विश्वास करने का कारण होने पर, जिसे लिखित में दर्ज करना होगा, कि वह व्यक्ति अधिनियम के अंतर्गत अपराध का दोषी है, हिरासत में लेने की शक्ति रखता है। यह बलपूर्वक कहा गया कि हिरासत में लेने की शक्ति व आवश्यक बचाव अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत प्रतिष्ठापित हैं। यह दलील प्रस्तुत की गई कि क्योंकि प्रतिवादी द्वारा यह दर्शाने के लिए कि यह अर्थशोधन का मामला है अकाट्य सामग्रियाँ एकत्रित की गई हैं तथा प्रवर्तन निद्शालय द्वारा अनुरोध पत्र जारी किया गया है और यदि न्यायालय अग्रिम ज़मानत प्रदान करने के द्वारा दखल देता है, तो प्राधिकारण अपीलार्थी को हिरासत में लेने व पूछताछ करने के अपने वैधानिक अधिकार का प्रयोग नहीं कर पाएगा।

20. विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उन्होंने विदेशी बैंकों से विशेष सूचनाएँ प्राप्त की हैं और कंपनियों व संपत्तियों के विषय में भी तथा यह अर्थशोधन का स्पष्ट मामला है। विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि न्यायालय के पास प्रवर्तन निदेशालय द्वारा एकत्रित सामग्रियों के अवलोकन की शक्ति है तथा उन्हें इस प्रारम्भिक स्तर पर, जब न्यायालय हिरासत-पूर्व ज़मानत प्रदान करने के मामले पर विचार कर रहा है, अपीलार्थी के साथ साझा नहीं किया जा सकता। कई निर्णयों पर भरोसा जताते

हुए, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि कार्यशैली के रूप में, न्यायालयों द्वारा सदैव ही अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गई केस डायरियों को देखा गया है तथा अपनी न्यायिक चेतना की संतुष्टि हेतु सामग्रियों/दस्तावेज़ों को प्राप्त किया गया है व देखा गया है। अपने तर्क के पक्ष में, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा *रोमिला थापर व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य* **(2018) 10 एस.सी.सी. 753,** *जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य व अन्य* **(2012) 4 एस.सी.सी. 379** तथा *प्रवर्तन निदेशालय व अन्य बनाम पी. वी. प्रभाकर राव* **(1997) 6 एस.सी.सी. 647** तथा अन्य निर्णयों पर भरोसा जताया गया व न्यायालय से प्रवर्तन निदेशालय द्वारा सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत की गई सामग्रियों को देखने की प्रार्थना की गई।

21. अग्रिम ज़मानत प्रदान करने का विरोध करते हुए, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रवर्तन निदेशालय के पास यह साबित करने के लिए कि यह अर्थशोधन का मामला है अकाट्य साक्ष्य उपलब्ध हैं तथा अपीलार्थी से हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता है। विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आर्थिक अपराध एक विशिष्ट दर्जे के अपराध हैं तथा प्रवर्तन निदेशालय को पैसों के स्रोत को ढूंढने के लिए हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता है तथा उन्होंने अपील को खारिज किए जाने की प्रार्थना की।

22. जैसा कि पहले भी देखा गया है, प्रतिपादित अपराध धारा 120ख भा.दं.सं. सहपठित 420 भा.दं.सं., भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 व धारा 13(2) सहपठित 13(1)(घ) के अंतर्गत आते हैं। अपीलार्थी व अन्य के विरुद्ध मामला अ.नि.अ. की धारा 3 व 4 के अंतर्गत दर्ज है। विचारणीय मुख्य बिंदु यह है कि अपीलार्थी अग्रिम ज़मानत के विशेषाधिकार का अधिकारी है या नहीं। यह विचार करने के लिए कि अपीलार्थी को अग्रिम ज़मानत का विशेषाधिकार प्रदान किया जाए या नहीं, विशिष्ट अधिनियमिति- अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002, की मुख्य विशेषताओं पर विचार करने की आवश्यकता है।

23. **अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002- विशिष्ट अधिनियमितिः-**

अर्थशोधन धन के अवैध स्रोतों को छिपाने तथा अर्थशोधनकर्ता द्वारा आपराधिक कृत्यों से संचित धन को निधि में परिवर्तित कर अन्य संस्थान में संचित करने अथवा वैध संपत्ति के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया है। यह जग जाहिर है कि अर्थशोधन न केवल देशों के वित्तीय तंत्र को किंतु उनकी अखंडता व संप्रभुता को भी गंभीर खतरा उत्पन्न करता है। अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के जून, 1998 में आयोजित विशेष सत्र द्वारा अपनायी गई राजनीतिक उद्घोषणा के अनुसरण में अधिनियमित किया गया था, जिसमें सदस्य राज्यों को राष्ट्रीय अर्थशोधन विधि व कार्यक्रम को अपनाने के लिए बुलाया गया

था, जिसका मूल दृष्टिकोण अर्थशोधन द्वारा देशों के वित्तीय तंत्र तथा उनकी अखंडता व संप्रभुता को उत्पन्न गंभीर खतरे का सामना करना था।

24. अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 के **उद्देश्यों व कारणों के विवरण** में यह माना गया है कि, अर्थशोधन न केवल देशों के वित्तीय तंत्र को बल्कि उनकी अखंडता व संप्रभुता के लिए भी गंभीर खतरा उत्पन्न करता है। अ.नि.अ. एक विशिष्ट अधिनियमिति है जिसमें अर्थशोधन को रोकने हेतु पर्याप्त बचावों के साथ प्रावधान मौजूद हैं। अर्थशोधन निवारण अधिनियम, 2002 की प्रस्तावना कहती है कि "अर्थशोधन की रोकथाम तथा अर्थशोधन से जनित, या उसमें शामिल संपत्ति व उससे संबंधित या उसमें संलग्न मामलों के लिए ज़ब्त करने की व्यवस्था प्रदान करने हेतु एक अधिनियम है।"

25. अ.नि.अ के अध्याय- 2 में अर्थशोधन के अपराधों से संबंधित प्रावधान निहित हैं। अ.नि.अ. की धारा- 2(1)(p) "**अर्थशोधन**" को परिभाषित करती है कि इसका वही अर्थ है जो इसे धारा 3 में दिया गया है। अ.नि.अ. की धारा- 2(1)(ra) "सीमा पार प्रभाव वाले अपराधों" को परिभाषित करती है। "सीमा पार प्रभाव वाले अपराधों" को रोकने के लिए, अ.नि.अ. में धारा 55 से 61 तक शामिल हैं जो अनुबंध करने वाले राज्यों के मध्य अर्थशोधन व प्रतिपादित अपराधों से संबंधित कुछ मामलों में सहायता हेतु पारस्परिक व्यवस्थाओं तथा संपत्ति को संलग्न व

ज़ब्त करने हेतु प्रक्रिया से संबंधित हैं। अ.नि.अ. की धारा- 2(1)(y) "अनुसूचित अपराध" को परिभाषित करती है जो निम्न प्रकार हैः-

"**2. परिभाषाएँ -**

(1).....

(Y) "अनुसूचित अपराध" का अर्थ है-

i. अनुसूची के भाग-क में विनिर्दिष्ट अपराध; या
ii. अनुसूची के भाग-ख में विनिर्दिष्ट अपराध यदि ऐसे अपराधों में शामिल कुल मूल्य एक करोड़ या उससे अधिक है; या
iii. अनुसूची के भाग-ग में विनिर्दिष्ट अपराध।"

"अनुसूचित अपराध**"** अर्थशोधन के अपराध हेतु एक अनिवार्य शर्त है जो उस पैसे को उत्पन्न करेगा जो शोधित किया जा रहा है। अ.नि.अ. में अनुसूचियाँ हैं जिनमें मूल रूप से तीन भाग नामशः भाग-क, भाग-ख व भाग-ग थे। भाग-क में विभिन्न पैराग्राफ हैं जो भारतीय दंड संहिता, नशीली दवा एवं मादक पदार्थ अधिनियम, 1985, के अंतर्गत अपराधों को, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 के अंतर्गत अपराधों को तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 **(पैराग्राफ 8)** इत्यादि के अंतर्गत अपराधों को बताते हैं। अनुसूची को 2009 के अधिनियम 21 द्वारा संशोधित किया गया था (दिनांक 01.06.2009 से प्रभावी)। 2018 के संशोधन अधिनियम 16 के द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 को अ.नि.अ. की अनुसूची के भाग-क में जोड़ा गया था (दिनांक 26.07.2018 से प्रभावी)।

26. अ.नि.अ. की धारा 3 “अर्थशोधन” को एक अपराध बताती है। अ.नि.अ की धारा 3 के अनुसार, जो कोई भी अपराध के मुनाफे से संबंधित किसी भी प्रक्रिया या गतिविधि में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होने का प्रयास करता है या जानते हुए सहायता करता है या जानते हुए एक पक्ष है या वास्तव में शामिल है तथा इसको एक बेदाग संपत्ति के रूप में दर्शाता है, वह अर्थशोधन के अपराध का दोषी होगा। धारा 3 सहित अ.नि.अ. के प्रावधान विभिन्न संशोधनों से गुज़रे हैं। धारा 3 में मौजूद शब्द “अपराध के मुनाफे व योजना के साथ” को 2013 के संशोधन अधिनियम के द्वारा “अपराध के मुनाफे के साथ ही इसको छुपाना, अधिकार में रखना, अधिग्रहण या प्रयोग व योजना बनाना या दावा करना” के रूप में संशोधित कर दिया गया है (दिनांक 15.02.2013 से प्रभावी)।

27. अ.नि.अ. की धारा 4 अर्थशोधन हेतु दंड से संबंधित है। 2013 के संशोधन अधिनियम 2 से पूर्व, धारा 4 में कठोर कारावास जिसकी अवधि कम से कम तीन वर्ष और अधिकतम सात वर्ष तथा जुर्माना जो रु. 5,00,000/- तक हो सकता था के दंड का प्रावधान था। 2013 के संशोधन अधिनियम के द्वारा, धारा 4 को S.O. 343(E) दिनांकित 08.02.2013 के द्वारा संशोधित किया गया जो दिनांक 15.02.2013 से प्रभावी है। अब, अ.नि.अ. की धारा 4 द्वारा दोषी के लिए एक ऐसा दंड निर्धारित है जिसमें न्यूनतम तीन वर्ष व अधिकतम सात वर्ष के कठोर कारावास का प्रावधान जुर्माना सहित है। जुर्माने की सीमा को हटा दिया गया है

तथा अब संशोधन के उपरांत, दोषी के विरुद्ध रु. 5,00,000/- से अधिक का जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

28. अ.नि.अ. की धारा 5 जो अर्थशोधन में शामिल संपत्ति को कुर्क करने की व्यवस्था प्रदान करता है, में लिखा है कि जहाँ निदेशक या निदेशक द्वारा इस धारा हेतु अधिकृत किसी अन्य अधिकारी जो उप-निदेशक के दर्जे से नीचे का न हो, के पास उसके अधिकार में मौजूद सामग्री के आधार पर "**विश्वास करने का कारण**" **(ऐसे विश्वास का कारण लिखित में दर्ज किया जाए)** हो, कि (क) किसी व्यक्ति के पास अपराध का कोई मुनाफा है; तथा (ख) अपराध के ऐसे मुनाफे को छुपाए जाने, हस्तांतरित किए जाने या इस प्रकार से उपयोग किए जाने की संभावना है जिसके परिणामस्वरूप अपराध के ऐसे मुनाफे की अध्याय 3 के अंतर्गत ज़ब्त करने संबंधित कार्यवाही को विफल किया जा सकता है, वह लिखित आदेश द्वारा, उस प्रकार से जैसा कि निर्धारित हो, ऐसी संपत्ति को अस्थायी रूप से अधिकतम 150 दिन की अवधि के लिए कुर्क कर सकता है। धारा 5 यह प्रदत्त करती है कि ऐसी कुर्की का कोई भी आदेश तब तक न किया जाए जब तक अनुसूचित अपराध के संबंध में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 की 2) की धारा 173 के अंतर्गत दंडाधिकारी को एक रिपोर्ट अग्रेषित न की जाए या उस अनुसूची में उल्लिखित अपराध की जाँच हेतु अधिकृत व्यक्ति द्वारा अनुसूचित अपराध का

संज्ञान लेने हेतु एक दंडाधिकारी या न्यायालय के समक्ष एक शिकायत न दर्ज की जाए, जैसा भी मामला हो।

29. अ.नि.अ. में "**विश्वास करने का कारण**" शब्दावली को परिभाषित नहीं किया गया है। "**विश्वास करने का कारण**" वाक्य को भा.दं.सं. की धारा 26 में परिभाषित किया गया है। धारा 26 भा.दं.सं. के अनुसार, एक व्यक्ति के पास एक विषय पर "**विश्वास करने का कारण**" होना तब माना जाता है, यदि उसके पास ऐसा विश्वास करने का पर्याप्त कारण हो परंतु अन्यथा नहीं। विशिष्ट अधिकारी के पास "**विश्वास करने का कारण**" उसके अधिकार में मौजूद सामग्री के आधार पर होना चाहिए कि जिस संपत्ति को कुर्क करने की मांग की गई है उसके छुपाए जाने, हस्तांतरण किए जाने या इस प्रकार से उपयोग किए जाने की संभावना है जिसके परिणामस्वरूप उनकी संपत्ति को अधिनियम के अंतर्गत ज़ब्त करने संबंधित कार्यवाही को विफल किया जा सकता है। यह कहा गया है कि वर्तमान मामले में, अ.नि.अ. की धारा 5 के अंतर्गत शक्ति का उपयोग कर, निर्णायक प्रधिकरण द्वारा अपीलार्थी की कुछ संपत्तियों को कुर्क किया गया। इस कुर्की को चुनौती देते हुए, अपीलार्थी व अन्य द्वारा कथित रूप से अपीलीय न्यायाधिकरण के सम्मुख अपील प्रस्तुत की गई तथा अपीलीय प्राधिकरण द्वारा स्थगन आदेश प्रदान कर दिया गया तथा उक्त अपील का विचाराधीन होना बताया गया है।

30. जैसा कि विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा उचित रूप से तर्क प्रस्तुत किया गया, अ.नि.अ. के प्रावधानों के अंतर्गत पर्याप्त बचाव प्रदान किए गए हैं। अ.नि.अ. की धारा 5 के अंतर्गत, निदेशक या निदेशक द्वारा धारा 5 हेतु अधिकृत किसी अन्य अधिकारी जो उप-निदेशक के दर्जे से नीचे का न हो, जिसने आक्षेपित आदेश को पारित किया, के पास "**विश्वास करने का कारण**" होने की आवश्यकता है कि जिस संपत्ति को कुर्क करने की मांग की गई है, उसके हस्तांतरण किए जाने या इस प्रकार से उपयोग किए जाने की संभावना है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी संपत्ति को ज़ब्त करने संबंधित कार्यवाही को विफल किया जा सकता है। इसके अलावा, उस अधिकारी द्वारा, जिसने कुर्की का आदेश पारित किया है, ऐसा विश्वास होने के कारण को दर्ज किया जाना आवश्यक है। अ.नि.अ. के प्रावधान व नियम भी वह शैली प्रदत्त करते हैं जिसमें संपत्ति की अस्थायी कुर्की की प्रति को अ.नि.अ. की धारा 5 की उपधारा (2) के अंतर्गत सामग्री के साथ निर्णायक प्राधिकरण को अग्रेषित किया जाता है।

31. अ.नि.अ. की धारा 73 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के दौरान सुरक्षा उपायों को सुनिश्चित करने के लिए, केंद्र सरकारा द्वारा "*अर्थशोधन निवारण (निर्णायक प्राधिकरण को संपति की अस्थायी कुर्की की प्रति के साथ सामग्री, तथा कारण की प्रति के साथ ही सर्वेक्षण के संबंध में सामग्री अग्रेषित करने की विधि तथा इसको धारण करने की अवधि) नियम, 2005 का निर्माण किया गया है।*" उक्त नियमों

का नियम 3 निर्णायक प्राधिकरण को संपत्ति की अस्थायी कुर्की के आदेश की प्रति के साथ अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (2) के अंतर्गत सामग्री अग्रेषित करने की विधि प्रदान करता है। नियम 3 निर्णायक प्राधिकरण को भेजे गए सीलबंद लिफाफे की गोपनीयता के संबंध में विभिन्न रक्षा उपायों की शर्तें लगाता है।

32. अ.नि.अ. की धारा 17 तलाशी व कब्ज़े में लेने से संबंधित है। धारा 17 जो तलाशी व कब्ज़े में लेने से संबंधित है, में यह कहा गया है कि जहाँ निदेशक या निदेशक द्वारा इस धारा हेतु अधिकृत किसी अन्य अधिकारी जो उप-निदेशक के दर्जे से नीचे का न हो, के पास उसके अधिकार में मौजूद सामग्री के आधार पर "**विश्वास करने का कारण**" **(ऐसे विश्वास का कारण लिखित में दर्ज किया जाए)** हो कि किसी व्यक्ति द्वारा एक अपराध किया गया है जिसमें अर्थशोधन शामिल है या उसके पास अर्थशोधन आदि में शामिल अपराध का मुनाफा है, तो वह इमारत, स्थान की तलाशी ले सकता है तथा इस तलाशी के परिणामस्वरूप पाए गए किसी भी अभिलेख को ज़ब्त कर सकता है। अ.नि.अ. की धारा 17 "**विश्वास करने का कारण**" तथा "**ऐसे विश्वास को लिखित में दर्ज किया जाए**" वाक्यों का उपयोग करता है। यहाँ पर पुनः, अधिकृत अधिकारी तलाशी लेने तथा ज़ब्त करने पर या रोक आदेश जारी होने पर न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को ,जैसा कि निर्दिष्ट हो, ऐसी शैली में एक "**सीलबंद लिफाफे**" में अपने कब्जे में मौजूद सामग्री के साथ दर्ज किए गए कारणों की एक प्रति भेजेगा तथा ऐसा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ऐसे

कारणों व सामग्रियों को जैसा कि निर्दिष्ट हो उस अवधि के लिए रखेगा। अ.नि.अ. की धारा 73 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के दौरान सुरक्षा उपायों को तथा तलाशी व अभिग्रहण की शुद्धता को सुनिश्चित करने के लिए, केंद्र सरकारा द्वारा "*अर्थशोधन निवारण अधिनियम (फॉर्म, तलाशी व अभिग्रहण या रोक तथा न्यायनिर्णायक प्रधिकारी को कारण व सामग्रियाँ अग्रेषित करने की शैली, कुर्की तथा रिकॉर्ड्स की अभिरक्षा तथा धारण करने की अवधि) नियम, 2005 का निर्माण किया गया है*"।

33. अ.नि.अ. की धारा 19 विनिर्दिष्ट अधिकारी के हिरासत में लेने की शक्ति से संबंधित है। अ.नि.अ. की धारा 19 की उपधारा (1) विनिर्दिष्ट अधिकारी जैसे कि निदेशक, उप-निदेशक, सहायक निदेशक या ऐसा कोई अन्य अधिकारी के पास जो केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत हो, कब्जे में मौजूद सामग्री के आधार पर, "**विश्वास करने का कारण**" होने पर तथा "**ऐसे विश्वास को लिखित में दर्ज किया जाए**" कि व्यक्ति अ.नि.अ के अंतर्गत दंडनीय अपराध का दोषी है, ऐसे व्यक्ति को हिरासत में लेने की शक्ति है। विनिर्दिष्ट अधिकारी को चाहिए कि वह शीघ्रतम अभियुक्त को हिरासत में लेने के आधारों की जानकारी दे और अधिनियम की धारा 19 के उपधारा (3) के अनुसार हिरासत में लिए गए व्यक्ति को क्षेत्राधिकार वाले न्यायिक दंडाधिकारी या महानगरीय दंडाधिकारी के समक्ष हिरासत में लेने के स्थान से दंडाधिकारी तक की यात्रा के समय को छोड़कर 24 घंटे के

भीतर प्रस्तुत करना आवश्यक है। अधिनियम की धारा 73 के अंतर्गत दी गई शक्ति का इस्तेमाल करते समय रक्षा उपायों को सुनिश्चित करने हेतु केंद्र सरकार द्वारा "*अर्थशोधन निवारण अधिनियम (निर्णायक प्राधिकरण को एक व्यक्ति को हिरासत में लेने के आदेश की प्रति के साथ सामग्री को अग्रेषित करने की शैली तथा इसको धारण करने की अवधि) नियम, 2005"* का निर्माण किया गया है। उक्त नियम का नियम 3 मांग करता है कि हिरासत में लेने वाला अधिकारी हिरासत के आदेश की एक प्रति व सामग्री को सीलबंद लिफाफे में जिस पर "गोपनीय" लिखा हो निर्णायक प्रधिकरण को भेजे तथा नियम 3 सामग्रियों की गोपनीयता बनाये रखने की विधि प्रदत्त करता है।

34. जैसा कि श्री तुषार महता द्वारा उचित प्रकार से तर्क प्रस्तुत किया गया कि अ.नि.अ. के अंतर्गत हिरासत में लेने हेतु दी गई प्रक्रिया पर्याप्त रक्षा उपाय सुनिश्चित करती है जैसे: (1) केवल विनिर्दिष्ट अधिकारियों को ही हिरासत में लेने का अधिकार दिया गया है; (2) "**विश्वास करने के कारण**" के आधार पर, कि अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध को अंजाम दिया गया है; (3) ऐसे विश्वास के कारणों को लिखित में दर्ज करना होगा; (4) निर्णायक प्राधिकरण को साक्ष्य व सामग्री को सीलबंद लिफाफे में ऐसी विधि से गोपनीयता बरकरार रखने में रक्षा उपायों को सुनिश्चित करते हुए सौंपा जाए जैसा कि निर्धारित की गयी है; तथा (5) अ.नि.अ. के अंतर्गत हिरासत में लिए गए हर व्यक्ति को न्यायिक दंडाधिकारी

या महानगरीय दंडाधिकारी के समक्ष 24 घंटे के भीतर प्रस्तुत किया जाए। अ.नि.अ की धारा 19 विनिर्दिष्ट अधिकारी को उसके कब्जे में मौजूद सामग्री के आधार पर तथा "**विश्वास करने का कारण**" व "**ऐसे विश्वास के कारण को लिखित में दर्ज किया जाए**" कि कोई व्यक्ति अ.नि.अ. के अंतर्गत दंडनीय अपराध का दोषी है, को हिरासत में ले ने की शक्ति प्रदत्त करता है। उच्च दर्जे के विनिर्दिष्ट अधिकारियों में ऐसे व्यक्ति को हिरासत में लेने की वैधानिक शक्ति निहित है जिसके लिए अधिकारी के पास "**विश्वास करने का कारण**" हो कि उक्त व्यक्ति अ.नि.अ. के अंतर्गत दंडनीय अपराध का दोषी है। अ.नि.अ के मामलों में अग्रिम ज़मानत प्रदान करने की शक्ति का उपयोग करना विनिर्दिष्ट अधिकारी की हिरासत में लेने की वैधानिक शक्ति जो कि विधि में पर्याप्त रक्षा उपायों के साथ प्रतिष्ठापित है को नष्ट करना होगा ।

35. अ.नि.अ. की धारा 71 अ.नि.अ. के प्रावधानों को अधिभावी प्रभाव देती है। अ.नि.अ. की धारा 71 के अनुसार अधिनियम के प्रावधानों का अन्य सभी लागू होने वाले अधिनियमों के प्रावधानों पर अधिभावी प्रभाव लागू होगा। अ.नि.अ. के प्रावधान शेष सभी अधिनियमों के विपरीत प्रावधानों से प्रबल होंगे। अ.नि.अ. की धारा 65 के अनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रावधान अधिनियम के प्रावधानों पर उतना ही लागू होंगे जहाँ तक कि वह अ.नि.अ. के प्रावधानों के साथ असंगत न हों।

36. जहाँ तक ज़मानत प्रदान करने के मामले का संबंध है, अ.नि.अ की धारा 45 गैर-आज्ञाकारी शर्त के साथ शुरू होती है। अधिनियम की अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत तीन वर्ष से अधिक काल के कारावास वाले किसी भी दंडनीय अपराध के आरोपी व्यक्ति की ज़मानत याचिका हेतु धारा 45 दो शर्तें लगाती है जो हैं, (1) कि अभियोजक को ऐसी ज़मानत अर्जी का विरोध करने का एक मौका मिलना चाहिए; (2) कि न्यायालय को यह संतुष्टि प्रदान की जाए कि यह विश्वास करने के लिए तर्कसंगत आधार मौजूद है कि आरोपी व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और कि ज़मानत के दौरान उसके द्वारा ऐसा कोई भी अपराध किए जाने की संभावना नहीं है।

37. अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत वर्गीकृत अपराधों हेतु धारा 45(1) के अंतर्गत दोहरी शर्तों को *निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ व अन्य* **(2018) 11 एस.सी.सी. 1** में विवेकहीन व पक्षपातपूर्ण तथा अमान्य माना गया। जहाँ तक अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत अभियुक्त को ज़मानत पर रिहा करने हेतु दोहरी शर्तों में, उच्चतम न्यायालय द्वारा इसे असंवैधानिक माना गया क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 व 21 का उल्लंघन करता है। तत्पश्चात, धारा 45 को 2008 के संशोधन अधिनियम 13 के द्वारा संशोधित किया जा चुका है। इन शब्दों "*अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत तीन वर्ष से अधिक कारावास की अवधि के लिए कारावास*" के स्थान पर"*इस अधिनियम के अंतर्गत अपराध का आरोपी*"

शब्दों को रखा गया है। *निकेश ताराचंद से पहले* व *निकेश ताराचंद के बाद* धारा 45 निम्नलिखित हैः-

धारा 45- **निकेश ताराचंद शाह से पूर्व**	**धारा 45-निकेश ताराचंद शाह के उपरांत**
धारा 45 अपराध का संज्ञेय व गैरज़मानती होना।	धारा 45 अपराध का संज्ञेय व गैरज़मानती होना।
(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित होने के बावजूद, **अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत तीन वर्ष से अधिक अवधि के कारावास के लिए दंडनीय अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति को ज़मानत अथवा उसके स्वयं के प्रतिज्ञा पत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि -**	(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में निहित होने के बावजूद, **किसी भी व्यक्ति को ज़मानत अथवा उसके स्वयं के प्रतिज्ञा पत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि -**
I. सरकारी अभियोजक को ऐसी रिहाई की याचिका का विरोध करने का मौका न दिया गया हो; तथा	I. सरकारी अभियोजक को ऐसी रिहाई की याचिका का विरोध करने का मौका न दिया गया हो; तथा
II. जब सरकारी अभियोजक ऐसी याचिका का विरोध न करे तथा न्यायालय इस बात पर संतुष्ट हो कि यह विश्वास करने के लिए तर्कसंगत आधार मौजूद हैं कि आरोपी व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और ज़मानत के दौरान उसके द्वारा ऐसा कोई भी अपराध किए जाने की संभावना नहीं है;	II. जब सरकारी अभियोजक ऐसी याचिका का विरोध न करे तथा न्यायालय इस बात पर संतुष्ट हो कि यह विश्वास करने के लिए तर्कसंगत आधार मौजूद हैं कि आरोपी व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और ज़मानत के दौरान उसके द्वारा ऐसा कोई भी अपराध किए जाने की संभावना नहीं है;
बशर्ते कि ऐसा व्यक्ति जिसकी उम्र 16 वर्ष से कम हो, या वह महिला हो, या बीमार या दुर्बल हो, को ज़मानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश दे।	बशर्ते कि ऐसा व्यक्ति जिसकी उम्र 16 वर्ष से कम हो, या वह महिला हो, या बीमार या दुर्बल हो, या **एक करोड़ रुपयों से कम की राशि** के अर्थशोधन के लिए स्वयं या अन्य सह-अभियुक्तों के साथ अभियुक्त हो **तो उसे ज़मानत पर रिहा किया जा सकता है, यदि विशेष न्यायालय ऐसा निर्देश दे :**

38. घटना वर्ष 2007-2008 की थी। सी.बी.आई. द्वारा दिनांक 15.05.2017 को श्री कार्ति चिदंबरम, याचिकाकर्ता व अन्य के विरुद्ध भा.द.सं. की धारा 120-ख सहपठित धारा 420 व भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 व धारा 13(2) सहपठित धारा 13(1)(घ) के तहत मामला दर्ज किया गया था। याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री ए.एम. सिंघवी द्वारा निवेदन किया गया कि यह मानने के लिए 'विश्वास करने का कारण' नहीं हो सकता है कि याचिकाकर्ता ने अ.नि.अ. की धारा 3 के अंतर्गत अपराध किया है, क्योंकि कथित अपराध को कारित किए जाने के समय वर्ष 2007-2008 में भा.द.सं. की धारा 120-ख व धारा 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 अ.नि.अ. की अनुसूची के भाग 'क' में मौजूद नहीं थे तथा इन्हें वर्ष 2009 के संशोधन अधिनियम 21 द्वारा ही जोड़ा गया था, जो कि क्रमशः 01.06.2009 व 26.07.2018 से प्रभावी हैं तथा इसलिए, प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ता द्वारा अ.नि.अ. के अंतर्गत अपराध किए जाने का मामला नहीं बनता। यह कहा गया कि संविधान के अनुच्छेद 20 के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति को उस कार्य, जिसे अपराध के रूप में आरोपित किया गया है, को करने के समय प्रभावी कानून के उल्लंघन के अलावा अन्य किसी अपराध के लिए दोषी न ठहराया जाए। जब वर्ष 2007-2008 में अनुसूची के भाग-क में भा.द.सं. की धारा 120ख व धारा 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 सम्मिलित नहीं थे, तो यह नहीं

कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता व अन्य ने अ.नि.अ. के अंतर्गत अपराध किया है। जहाँ तक भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 का संबंध है, यह निवेदन किया गया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 नहीं लगाई गई है क्योंकि प्राथमिकी में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ता ने किसी सरकारी कर्मचारी को प्रभावित करने के इरादे से या इसके प्रतिफल के रूप में किसी सुख-सुविधा को स्वीकार किया या स्वीकार करने के लिए राज़ी हुआ और इसलिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत आरोप याचिकाकर्ता पर लागू नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह निवेदन किया गया कि यदि यह भी मान लिया जाए कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 लगाई जाती है, तो ए.एस.सी.पी.एल को कथित रूप से अदा की गई राशि मात्र दस लाख रुपये थी जबकि, अधिनियम की अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत धारा 8 को अनुसूचित अपराध बनाने के लिए नियमित की गई राशि तीस लाख रुपये थी और इसलिए, याचिकाकर्ता के विरुद्ध अपराध का कोई आधार नहीं था तथा मामले के ऐसा होने पर, याचिकाकर्ता अग्रिम ज़मानत का अधिकारी है।

39. अ.नि.अ. की धारा 45 अर्थशोधन के अपराध को संज्ञेय व गैरज़मानती बनाती है तथा अनुसूची के भाग-क के अंतर्गत तीन वर्ष से अधिक की अवधि के लिए दंडनीय अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति को, जब तक कि उससे संबंधित दोहरी शर्तों को संतुष्ट न किया जाए, ज़मानत पर रिहा नहीं किया जाएगा।

भा.द.सं. की धारा 120-ख - *आपराधिक षड़यंत्र* तथा धारा 420 - *छल करना और बेईमानी से संपत्ति देने के लिए प्रेरित करना* को अ.नि.अ. की अनुसूची के भाग-क में वर्ष 2009 के संशोधन अधिनियम 21, दिनांक 01.06.2009 से प्रभावी, तथा वर्ष 2013 के संशोधन अधिनियम 2, दिनांक 15.02.2013 से प्रभावी, के द्वारा समाहित किया गया था। इसी तरह से, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 को वर्ष 2008 के संशोधन अधिनियम 16, दिनांक 26.07.2018 से प्रभावी, के द्वारा अनुसूची के भाग-क **(पैरा 8)** में शामिल किया गया था। जैसा कि पहले इंगित किया गया था, सीबीआई द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जो कि कथित अपराध किये जाने के समय तब अनुसूची के भाग-क में थी।

40. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निवेदन किया कि क्योंकि भा.दं.सं. की धारा 120-ख व 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 को क्रमशः दिनांक 01.06.2009 व दिनांक 26.07.2018 से प्रभावी कर अनुसूची में समाहित किया गया तथा किसी आपराधिक/दांडिक विधि का कभी कोई भूतलक्षी प्रवर्तन नहीं हो सकता तथा परीक्षण यह नहीं है कि मुनाफे को व्यक्ति द्वारा अपने पास रखा गया अथवा नहीं; परंतु परीक्षण जैसा कि इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्दिष्ट किया गया यह है कि, अपराध किए जाने के समय अपराध में समाहित कृत्यों का परीक्षण तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत

संवैधानिक सुरक्षा का उल्लंघन कर याचिकाकर्ता पर अ.नि.अ. के अंतर्गत अभियोग नहीं चलाया जा सकता है।

41. संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति को उस कार्य, जिसे अपराध के रूप में आरोपित किया गया है, को करने के समय प्रभावी कानून के उल्लंघन के अलावा अन्य किसी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा। प्रतिपादित अपराध की प्राथमिकी सीबीआई द्वारा भा.दं.सं. की धारा 120ख, धारा 420 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत भी दर्ज की गई है। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, भा.दं.सं. की धारा 120ख व धारा 420 को अनुसूची के भाग-क में वर्ष 2009 के संशोधन अधिनियम 21, दिनांक 01.06.2009, के द्वारा जोड़ा गया था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 को अनुसूची के भाग-क में वर्ष 2018 के संशोधन अधिनियम 16, दिनांक 26.07.2018, के द्वारा जोड़ा गया था। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 सात वर्ष की अवधि तक कारावास हेतु दंडनीय है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 वर्ष 2007-2008 में कथित अपराध किये जाने के समय अ.नि.अ. की अनुसूची के भाग-क में भली-भांति से उपलब्ध थी। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि किए गए कथित कृत्यों, जो तब विद्यमान विधि के अनुसार अपराध नहीं था, के लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन कर कार्यवाही की जा रही है।

इस दलील कि याचिकाकर्ता के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 प्रतिपादित अपराध नहीं हो सकती, के गुणागुणों पर इस चरण पर विचार नहीं किया जा सकता है, जब यह न्यायालय केवल अग्रिम ज़मानत पर विचार कर रहा है।

42. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत की गई अन्य दलील यह है कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रासंगिक समय पर क्षेत्राधिकार प्राप्त करने हेतु न्यूनतम सीमा तीस लाख रुपये थी जबकि, प्रस्तुत मामले में, किसी भी भुगतान को प्रदर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री मौजूद नहीं है, केवल दस लाख रुपये (लगभग) के उस भुगतान के अलावा जिनका कि आई.एन.एक्स. मीडिया द्वारा कथित रूप से ए.एस.सी.पी.एल. को भुगतान किया गया था जिसका कि याचिकाकर्ता से किसी भी प्रकार का संबंध न होना बताया गया है। इस दलील कि, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 (अ.नि.अ. की अनुसूची-क में तब वर्ष 2007-08 में समाहित की गई) लागू होती है या नहीं तथा प्रवर्तन निदेशालय के पास अ.नि.अ. के अंतर्गत क्षेत्राधिकार प्राप्त करने की सीमा थी या नहीं, के गुणागुणों पर इस चरण पर विचार नहीं किया जा सकता, जब यह न्यायालय केवल अग्रिम ज़मानत हेतु प्रार्थना पर विचार कर रहा है।

43. अ.नि.अ. की धारा 4 के निबंधन में, अर्थशोधन का अपराध जुर्माने सहित न्यूनतम तीन वर्ष व अधिकतम सात वर्ष के कठोर कारावास से दंडनीय है। दंड

प्रक्रिया संहिता की दूसरी अनुसूची अन्य विधियों के विरुद्ध अपराधों के श्रेणी विभाजन से संबंधित है तथा संहिता की दूसरी अनुसूची के निबंधन में, वह अपराध जो तीन वर्ष व उससे अधिक परंतु सात वर्ष से कम के कारावास से दंडनीय है, एक संज्ञेय व गैरज़मानती अपराध है। अतः अधिनियम की धारा 4 सहपठित संहिता की दूसरी अनुसूची यह स्पष्ट करती है कि अ.नि.अ. के अंतर्गत अपराध संज्ञेय अपराध होते हैं। जैसा कि पूर्व में इंगित किया जा चुका है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 का तब अनुसूची के भाग 'क' में उल्लेख पाया गया था **(पैरा 8)**। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 8 सात वर्ष की अवधि के लिए दंडनीय है। अतः अ.नि.अ. की धारा 45 की महत्वपूर्ण आवश्यकता "अनुसूची के भाग 'क' के अंतर्गत तीन वर्ष से अधिक के कारावास की अवधि से दंडनीय अपराध का दोषी" पूरी होती है, जो अपराध को अ.नि.अ. के अंतर्गत लाता है। याचिकाकर्ता की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि, अ.निअ. के अंतर्गत याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज किया जाना ही सुनवाई योग्य नहीं है।

<u>न्यायालय जाँच के मध्य एकत्रित दस्तावेज़ों/सामग्रियों का अवलोकन कर सकता है अथवा नहीं</u>

44. लम्बी सुनवाई के दौरान ज्यादातर तर्क मुख्यतः इस सवाल पर दिए गए कि क्या न्यायालय अभियोग द्वारा प्रस्तुत किए गए उन दस्तावेज़ों व सामग्रियों का अवलोकन कर सकता है, जिन्हें अभियुक्त को पहले दिखाया न गया हो।

45. विद्वान महा-न्यायवादी द्वारा यह दलील दी गई कि जाँच के दौरान प्रवर्तन निदेशालय द्वारा सामग्रियाँ एकत्रित की गई हैं और विदेशी बैंकों ने संस्थाओं व संपत्तियों के संदर्भ में विशिष्ट जानकारियाँ प्रदान की हैं कि पैसे को छद्म संस्थाओं के नाम पर रखा गया है और कथित पैसे का उपयोग वैध सम्पतियों के निर्माण में किया गया है तथा इस तरह एकत्रित सामग्रियों के संबंध में अभिरक्षा में पूछताछ की आवश्यकता है। विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने इस प्रकार - एकत्रित सामग्रियों को सील बंद लिफाफे में प्रस्तुत करने की मांग की और अभिरक्षा में पूछताछ की आवश्यकता के संबंध में न्यायालय के अंतःकरण को संतुष्ट करने हेतु दस्तावेज़ों व सामग्रियों का अवलोकन करने के लिए न्यायालय से अनुरोध किया।

46. न्यायालय से सील बंद लिफाफे में प्रस्तुत किये गए दस्तावेज़ों का अवलोकन करने का अनुरोध करने वाले विद्वान सॉलिसिटर जनरल के तर्क का अपीलार्थी द्वारा इन आधारों पर कड़ा विरोध किया गया कि :- (i) प्रवर्तन निदेशालय अभियुक्त के पीठ पीछे से अभियुक्त की अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए न्यायालय में अनियमित ढंग से दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं कर सकता; (ii) जाँच के दौरान प्रवर्तन निदेशालय द्वारा इस प्रकार एकत्रित सामग्रियों को तब तक न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जब तक कि उन्हें अभियुक्त को दिखाया न गया हो।

47. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कपिल सिब्बल द्वारा यह दलील दी गई कि दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज बयान केस डायरी का हिस्सा हैं तथा केस

डायरी में जाँच की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियाँ दिखाई देनी चाहिए जिनके आधार पर जाँच एजेंसी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अपराध किया गया है ताकि न्यायालय के सम्मुख एक अंतिम रिपोर्ट दाखिल की जा सके। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी कि ऐसी जाँच के दौरान जाँच अधिकारी को ऐसे विभिन्न दस्तावेज़ प्राप्त हो सकते हैं जिनका किए गए अपराध पर प्रभाव हो; हालांकि दस्तावेज़ स्वयं कभी केस डायरी का हिस्सा नहीं हो सकते हैं तथा विचारण के दौरान ये दस्तावेज़ दस्तावेज़ी साक्ष्य होंगे जिन्हें साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार साबित करने की आवश्यकता होगी इससे पहले कि ऐसे दस्तावेज़ों पर अभियोजन पक्ष के अभियोग के पुष्टिकरण हेतु निर्भिर हुआ जा सके। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा कोई केस डायरी नहीं बनायी जाती है; परंतु यह एक पृष्ठांकित पन्नों वाली फाइल बनाता है। ज़ोर देकर यह कहा गया कि यह भी मान लिया जाए कि प्रतिवादी द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 172 के अनुरूप एक केस डायरी बनाई गई थी, अ.नि.अ. के अंतर्गत अधिकृत अधिकारी द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जाँच अधिकारी के मत पर अग्रिम ज़मानत पर विचार करने के उद्देश्य से कभी भी निर्भर नहीं हुआ जा सकता है।

48. दलीलों के संबंध में अवलोकन हेतु दो बिंदु उभर कर आते हैं -

(i) क्या न्यायालय उन दस्तावेजों/सामग्रियों का अवलोकन कर सकता/नहीं कर सकता है जब तक कि पहले उन दस्तावेजों/सामग्रियों को अभियुक्त को न दिखाया

गया हो?; तथा (ii) क्या न्यायालय से अपेक्षा की जा रही है कि जाँच के मध्यवर्ती दौर में एक लघु जाँच की जाए कि अभियुक्त से पूछे गए प्रश्न संतोषजनक हैं या गोलमोल?

49. दं.प्र.सं. की धारा 172 उप-धारा (2) किसी भी न्यायालय को विचारण में उपयोग हेतु केस डायरी को मंगाने की अनुमति प्रदान करती है। धारा 172(3) दं.प्र.सं. में विशेष प्रावधान है कि न तो अभियुक्त और न ही उसके प्रतिनिधि केस डायरी को मंगाने के हकदार होगें और न ही वह या वे केवल इस कारण से उनको देखने के हकदार होगें कि न्यायालय द्वारा उनका संदर्भ लिया गया है। परन्तु यदि वे उस पुलिस अधिकारी के द्वारा उपयोग की जाती हैं, जिसने याद रखने के लिए उनको बनाया था या यदि न्यायालय ऐसे पुलिस अधिकारी का खंडन करने हेतु उनका प्रयोग करता है, तब दं.प्र.सं. की धारा 161 या साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के प्रावधानों का पालन होगा। इस संबंध में, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा *बालकराम बनाम उत्तराखंड राज्य व अन्य* **(2017) 7 एससीसी 668** पर विश्वास जताया गया। यह मानते हुए कि जाँच के मामले में सदैव गोपनीयता रखी जाती है तथा अभियुक्त की मांग पर उसे केस डायरी उपलब्ध कराना वांछनीय नहीं है, *बालकराम में,* उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्न प्रकार से कहा गयाः-

> **"15.** पुलिस डायरी जाँच अधिकारी द्वारा बनाया गया दिन-प्रतिदिन की जाँच का लेखा-जोखा मात्र है। न तो अभियुक्त और न ही उसका प्रतिनिधि ऐसी केस डायरी को मंगाने का हकदार है और न ही जाँच

अथवा विचारण के दौरान उसे देखने के हकदार हैं। धारा 172(2) दं.प्र.सं. द्वारा पुलिस दैनिकी की प्रविष्टियों का परीक्षण करने हेतु न्यायालय को प्रदत्त की गई असीम शक्ति, अभियुक्त को केस दैनिकी के निरीक्षण हेतु ऐसा निरंकुश अधिकार प्राप्त करने की अनुमति नहीं देगी।

.....

17. पूर्ववर्णित द्वारा, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त को केस डायरी का निरीक्षण करने का अधिकार न प्रदान करना, अतार्किक या मनमाना नहीं ठहराया जा सकता है। जाँच के मामले में सदैव गोपनीयता रखी जाती है तथा अभियुक्त की मांग पर उसे पुलिस डायरी उपलब्ध करना वांछनीय नहीं है।**"**

50. *सिद्धार्थ व अन्य बनाम बिहार राज्य* **(2005) 12 एससीसी 545** में उसी सिद्धांत को दोहराते हुए, उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार कहा गया है :-

"27. अंत में, हम इस ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि वर्तमान मामले में, हमने यह पाया कि अभियुक्त को पुलिस द्वारा बनाकर रखे जाने वाली संपूर्ण केस डायरी उपलब्ध करा दी गई थी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 172 के अंतर्गत, जाँच कर रहे प्रत्येक पुलिस अधिकारी को अपनी कार्यवाहियों को एक दैनिकी में दर्ज करना होता है, जिसमें उसे वह समय जब उस तक जानकारी पहुँची, वह समय जब उसने अपनी जाँच प्रारम्भ की व बंद की, उस स्थान या उन स्थानों को जहाँ वह गया तथा उसकी जाँच द्वारा पता लगाए गई परिस्थितियों के एक कथन को भी दर्शाना होता है। धारा 172 की उप-धारा (3) में यह विशेष रूप से प्रावधान है कि न तो अभियुक्त और न ही उसके प्रतिनिधि ऐसी दैनिकियों को मंगाने के हकदार होगें और न ही वह अथवा वे केवल इस कारण से उनको देखने के हकदार होगें कि न्यायालय द्वारा उनका जिक्र हुआ है, परन्तु यदि वे उस पुलिस अधिकारी के द्वारा उपयोग की जाती हैं, जिसने याद ताज़ा करने के लिए उनको बनाया था अथवा यदि न्यायालय ऐसे पुलिस अधिकारी का खंडन करने हेतु उनका प्रयोग करता है, तब धारा 161 दं.प्र.सं. के प्रावधानों का या साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के प्रावधानों का पालन होगा। न्यायालय को ऐसी दैनिकियों को साक्ष्य के रूप में उपयोग हेतु नहीं परन्तु अपराध की जाँच के समय हुई किसी

घटना को जानने में सहायता हेतु मंगाने की शक्ति प्राप्त है। ये प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता में कुछ विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समाविष्ट किये गये हैं। जाँच करने वाले पुलिस अधिकारी के सम्मुख ऐसी सूचनाओं की एक श्रृंखला आ सकती है जो कि अभियुक्त को बताई नहीं की जा सकती। वह ऐसे तथ्यों को केस डायरी में दर्ज करने हेतु बाध्य है। <u>परन्तु यदि संपूर्ण केस डायरी अभियुक्त को उपलब्ध करा दी जाती है, तो यह अन्य के प्रति गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है तथा उन लोगों की, जिन्होंने पुलिस को बयान दिए होगें, सलामती व सुरक्षा को भी प्रभावित कर सकती है। आपराधिक जाँच के मामले में सदैव गोपनीयता रखी जाती है और अभियुक्त को संपूर्ण केस डायरी उपलब्ध कराना वांछनीय नहीं है।</u> वर्तमान मामले में, हमनें पाया है कि अभियुक्त को संपूर्ण केस डायरी दे दी गई थी तथा जाँच अधिकारी का ऐसे बहुत से तथ्यों के विषय में अत्यधिक रूप से प्रति-परीक्षण किया गया था, जो कि मामले के उद्देश्य हेतु इतने प्रासंगिक नहीं थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश को यह देखने में सचेत रहना चाहिए था कि मामले का विचारण दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार होता।**" [रेखांकित किया गया]**

इसी स्थिति को *नरेश कुमार यादव बनाम रविंद्र कुमार व अन्य* ***(2008) 1 एससीसी 632*** *(पैरा 11 से 14), मलकियत सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य* ***(1991) 4 एससीसी 341*** *(पैरा 11)* तथा अन्य दूसरे निर्णयों में दोहराया गया है।

51. विभिन्न निर्णयों से यह पाया गया है कि कई अवसरों पर, न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि जाँच सही दिशा में आगे बढ़ रही है अथवा नहीं या ज़मानत आदि प्रदान करने के प्रश्न पर विचार करने हेतु सदैव ही केस डायरी/जाँच के दौरान अभियोजन द्वारा एकत्रित सामग्रियों को प्राप्त किया व उनका अवलोकन किया है। *प्रवर्तन निदेशालय व अन्य बनाम पी.वी. प्रभाकर राव* **(1997) 6 एससीसी 647** में, उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा ज़मानत देने वाले

पारित आदेश की विशुद्धता का परीक्षण करने हेतु अभिलेखों का अवलोकन किया था। *आर. के. कृष्ण कुमार बनाम असम राज्य व अन्य* **(1998) 1 एससीसी 474** में, उच्चतम न्यायालय ने धारा 172 दं.प्र.सं. के अंतर्गत बनाई गई केस डायरी को प्राप्त किया तथा केस डायरी का अवलोकन स्वयं की इस प्रकार संतुष्टि हेतु किया कि जाँच द्वारा यह उजागर हुआ है कि उसमें कंपनी द्वारा संस्था (उल्फा) को वित्तपोषित किया गया तथा यह कि वहाँ याचिकाकर्ताओं को इसमें भूमिका निभानी थी। *रोमिला थापर व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य* **(2018) 10 एससीसी 753** में पाँच सुप्रसिद्ध मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, अधिवक्ताओं व राजनीतिक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के प्रश्न पर विचार करते समय इस न्यायालय ने प्रासंगिक दस्तावेजों वाले रजिस्टरों तथा महाराष्ट्र राज्य द्वारा प्रस्तुत केस डायरी का अवलोकन किया था। हाँलाकि, न्यायालय ने उनसे उत्पन्न तथ्यात्मक स्थितियों का विस्तृत विवेचन करने से इस आधार पर परहेज़ किया था कि उनके आधार पर किया गया कोई भी विचार किसी भी तरह से अभियुक्त या अभियोजन पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। *मुकुंद लाल बनाम भारत संघ व अन्य* **1989 सुप. (1) एससीसी 622** में, धारा 172(3) दं.प्र.सं. की पुष्टि करते हुए तथा यह मानते हुए कि "मामले का विचारण कर रहे न्यायालय से बेहतर न्याय के हित का अभिरक्षक या संरक्षक कोई नहीं हो सकता", उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार माना गया :-

3. .....

"जहाँ तक अन्य अंशों का संबंध है, अभियुक्त को आवश्यक रूप से उन्हें देख पाने का हक होना जरूरी नहीं है क्योंकि एक आपराधिक विचारण या जाँच में, अभियुक्त के विरुद्ध जो भी साबित किया जाना है, वह दैनिकी के अलावा अन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना होगा तथा जैसा कि ऊपर उल्लिखित है न्यायालय अथवा पुलिस द्वारा दैनिकी का बहुत सीमित उद्देश्य हेतु उपयोग किया जा सकता है। ..... जब जाँच या विचारण चल रहा हो, तब जो भी अभियुक्त के विरुद्ध प्रतीत होता है वह न्यायालय के सम्मुख दैनिकी के अलावा अन्य साक्ष्य द्वारा स्थापित व प्रस्तुत करना होगा तथा अभियुक्त को साक्षियों के प्रति-परीक्षण का लाभ प्राप्त हो सके तथा न्यायालय के पास दैनिकी को मंगवाने व उसके उपयोग की शक्ति है, अवश्य ही साक्ष्य के रूप में नहीं परंतु जाँच या विचारण के सहायतार्थ, मेरा स्पष्ट मत है, कि धारा 172(3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्रावधानों को असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता है।"

हम उच्च न्यायालय के विवेक का पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं तथा इसके निष्कर्ष से सहमत हैं। हमारा मत यह है कि दं.प्र.सं. की धारा 172 की उप-धारा (3) में सन्निहित प्रावधानों को अतर्कसंगत या मनमाना नहीं ठहराया जा सकता है। धारा 172 दं.प्र.सं. की उप-धारा (2) के अंतर्गत स्वयं न्यायालय के पास दैनिकी की प्रविष्टियों को जाँचने की असीम शक्ति है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण रक्षोपाय है। व्यवस्थापिका ने जाँच या विचारण कर रहे न्यायालय में पूर्ण विश्वास दिखाया है। इसने न्यायालय को ऐसी किसी भी प्रासंगिक दैनिकी को मंगवाने की शक्ति प्रदान की है; यदि केस दैनिकी के संदर्भ में कोई अनियमितता या विरोधाभास उत्पन्न होता है, न्यायालय प्रविष्टियों को पुलिस अधिकारी का खंडन करने हेतु उपयोग कर सकता है जैसा कि दं.प्र.सं. की धारा 172 की उप-धारा (3) में प्रदत्त किया गया है। अंततः मामले का विचारण कर रहे न्यायालय से बेहतर न्याय के हित का अभिरक्षक या संरक्षक कोई नहीं हो सकता। दैनिकी की विषय-वस्तु के संदर्भ से पुलिस अधिकारी के खंडन द्वारा अभियुक्त के लाभ हेतु दैनिकी की प्रविष्टियों के उपयोग की शक्ति से कोई भी न्यायालय स्वयं को वंचित नहीं करेगा। इस रक्षोपाय को ध्यान में रखते हुए, अतर्कसंगतता या अनियंत्रयण का आरोप संवीक्षा में ठहर नहीं सकता। ..... जनहित की मांग है कि ऐसी प्रविष्टि अभियुक्त को

उपलब्ध न करायी जाए क्योंकि यह सूचनाकर्ताओं की सुरक्षा को खतरे में डाल सकता है तथा जाँच एजेंसी की सहायता के लिए कोई भी सूचना देने से सूचनाकर्ताओं को रोक सकता है, ..." **[रेखांकित किया गया]**

52. जहाँ तक विचारण के दौरान केस दैनिकी को प्रस्तुत करने व न्यायालय द्वारा उसके संदर्भ तथा केस दैनिकी को मंगवाने हेतु अभियुक्त के विरुद्ध प्रतिबंध का सवाल है, यह धारा 172 दं.प्र.सं. द्वारा नियंत्रित है। धारा 172 की उप-धारा (3) के अनुसार, न तो अभियुक्त और न ही उसका प्रतिनिधि ऐसी केस दैनिकी को मंगाने का अधिकारी है तथा जाँच या विचारण के दौरान उनको देखने का भी अधिकारी नहीं है। केस दैनिकी जाँच अधिकारी द्वारा याददाश्त ताज़ा करने हेतु उपयोग की जा सकती है तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 161 या धारा 145 के प्रावधानों के अनुसार न्यायालय इसका उपयोग ऐसे पुलिस अधिकारी के खंडन हेतु कर सकता है। जब तक जाँच अधिकारी या न्यायालय याददाश्त ताज़ा करने या धारा 145 के अंतर्गत उसका ध्यान आकर्षित करने के उपरांत धारा 161 के अंतर्गत पूर्व कथन के अनुसार जाँच अधिकारी का खंडन करने हेतु केस दैनिकी को उपयोग करता है, केस दैनिकी की प्रविष्टियों को अभियुक्त सबूत के तौर पर उपयोग नहीं कर सकता है (धारा 172(3) दं.प्र.सं. देखें)

53. यह सुस्थापित है कि, न्यायालय केस दैनिकी/जाँच के दौरान अभियोजन द्वारा एकत्रित सामग्री का अवलोकन अन्य बातों के साथ ऐसी परिस्थितियों में विचारण शुरू होने से भी पहले कर सकता है :- (i) अपनी चेतना की संतुष्टि हेतु कि जाँच

सहीं दिशा में चल रही है या नहीं; (ii) अपनी इस संतुष्टि हेतु कि जाँच उचित तरह से की गई है तथा यह कि जाँच के दौरान प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग या कुप्रयोग नहीं है; (iii) अभियुक्त को नियमित या अग्रिम ज़मानत प्रदान की जानी है या नहीं; (iv) अभियोजन हेतु अभियुक्त को और अधिक अभिरक्षा में रखने की आवश्यकता है या नहीं; (v) उच्च न्यायालय/विचारण न्यायालय के उस आदेश, जिसे चुनौती दी गई है, के सही होने के संबंध में स्वयं की संतुष्टि हेतु। उपरोक्त उदाहरण केवल उदाहरणार्थ हैं तथा परिपूर्ण नहीं हैं। जहाँ भी न्याय हित में आवश्यकता हो, न्यायालय के पास केस दैनिकी/जाँच के दौरान एकत्रित सामग्रियों को प्राप्त करने की शक्तियाँ हैं। जैसा कि *मुकुंद लाल* में माना गया है, अंततः मामले का विचारण कर रहे न्यायालय से बेहतर न्याय के हित का अभिरक्षक या संरक्षक कोई नहीं हो सकता। यह इंगित करने की आवश्यकता नहीं है कि जब न्यायालय दस्तावेज़ों/सामग्रियों को प्राप्त कर उनका अवलोकन करता है, तो यह केवल न्यायालय की चेतना की संतुष्टि हेतु होता है। जाँच के प्रारम्भिक चरणों में, न्यायालय को उन सामग्रियों, जिनका उसने अवलोकन किया है, का उद्धरण या शब्दशः उल्लेख नहीं करना चाहिए (जैसा कि इस मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किया गया है) तथा ऐसी टिप्पणियाँ नहीं करनी चाहिए जिनसे विचाराधीन अभियुक्त तथा अन्य कार्यवाहियों पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पहुँचे जिसके परिणामस्वरूप न्याय निष्फल हो जाए।

54. प्रवर्तन निदेशालय ने हमारे समक्ष सीलबंद लिफाफा प्रस्तुत किया जिसमें जाँच के दौरान एकत्रित सामग्रियाँ हैं तथा इसको प्राप्त किया गया। दिनांक 29.08.2019 के आदेश के माध्यम से हमनें कहा था कि सीलबंद लिफाफे की प्राप्ति हमारे इस निष्कर्ष पर निर्भर करेगी कि न्यायालय सामग्रियों का अवलोकन कर सकता है अथवा नहीं। जैसे कि पहले भी चर्चा की जा चुकी है, हमने यह माना है कि न्यायालय सामग्रियों/जाँच के दौरान एकत्रित दस्तावेज़ों को प्राप्त कर सकता है तथा अपनी चेतना की इस संतुष्टि हेतु कि जाँच सही दिशा में बढ़ रही है तथा ज़मानत/अग्रिम ज़मानत आदि प्रदान करने पर विचार करने हेतु उनका अवलोकन कर सकता है। वर्तमान मामले में, हालांकि न्यायालय द्वारा सीलबंद लिफाफा प्राप्त किया गया था, हम जान बूझकर सीलबंद लिफाफे को खोलने तथा दस्तावेज़ों का अवलोकन करने से बचे हैं। ताकि ऐसा न हो कि, यदि हम प्रत्यर्थी द्वारा एकत्रित सामग्रियों का अवलोकन करें तथा उन पर कुछ टिप्पणी करें, जिससे याचिकाकर्ता तथा ऐसे अन्य सह अभियुक्तों, जो न्यायालय के सम्मुख नहीं हैं, पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े जब वे विभिन्न न्यायाधिकरणों के सम्मुख उचित राहत हेतु उपस्थित हों। यह टिप्पणी करना पर्याप्त होगा कि अभी हम केवल गिरफ्तारी-पूर्व ज़मानत पर विचार करने के चरण में हैं। क्योंकि प्रत्यर्थी के अनुसार, उन्होंने ऐसे दस्तावेज़/सामग्रियाँ एकत्रित की हैं जिनके लिए अपीलार्थी से अभिरक्षा में पूछताछ

की आवश्यकता है, हम अपीलार्थी को गिरफ्तारी-पूर्व ज़मानत से इनकार करने के सीमित उद्देश्य हेतु प्रत्यर्थी की इस दलील को स्वीकार करना उचित मानते हैं।

55. निश्चित रूप से, अग्रिम ज़मानत की प्रार्थना पर विचार करते समय तथा प्रवर्तन निदेशालय/सीबीआई द्वारा प्रस्तुत सामग्रियों/टिप्पणी का अवलोकन करते समय, विद्वान एकल न्यायाधीश यह मानने हेतु अपनी चेतना की संतुष्टि कर सकता था कि यह अग्रिम ज़मानत प्रदान करने के लिए उचित मामला नहीं है। दूसरी ओर, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थी- प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्र का शब्दशः उल्लेख किया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा, प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्र का शब्दशः उल्लेख किया जाना उचित नहीं था, जो हमारे विचार से, अग्रिम ज़मानत प्रदान/इनकार करने पर विचार करने हेतु उचित दृष्टिकोण नहीं है। परंतु विद्वान एकल न्यायाधीश के ऐसे अनुचित दृष्टिकोण ने, हमारे विचार से, अपीलार्थी को अग्रिम जमानत प्रदान करने से इनकार करने के निष्कर्ष के औचित्य को यहाँ विचार किए गए अन्य सभी पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रभावित नहीं किया है।

तर्क :- प्रवर्तन निदेशालय द्वारा एकत्रित सामग्रियों को, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने से पहले, अपीलकर्ता को पूर्व में ही दिखाया जाना चाहिए था।

56. अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्रियों पर अग्रिम ज़मानत पर विचार करने के उद्देश्य

से तब तक कभी भी आश्रित नहीं हुआ जा सकता था जब तक अपीलकर्ता को उन दस्तावेज़ों/सामग्रियों को पूर्व में दिखा नहीं दिया जाता। यह तर्क दिया गया कि यदि अपीलकर्ता का प्रतिउत्तर पूर्ण रूप से "टालमटोल करने वाला" तथा "असहयोगी" था, जब तीन दिनों तक, अर्थात 19.12.2018, 01.01.2019 व 21.01.2019 को, उससे पूछताछ की गई थी, प्रत्यर्थी को अभियुक्त के सम्मुख रखी गई सामग्रियाँ तथा उसके द्वारा दिए गए उत्तरों को न्यायालय के सम्मुख यह दर्शाने हेतु प्रस्तुत करना चाहिए कि "अभियुक्त पूर्ण रूप से टालमटोल करने वाला तथा असहयोगी" था।

57. अपीलकर्ता का यह तर्क कि न्यायालय को पूछताछ के दौरान अभियुक्त के सामने रखे गए सवालों तथा अपीलकर्ता के द्वारा दिए गए उत्तरों की बारीकी से जाँच करनी होगी तथा स्वयं हेतु यह संतुष्टि करनी होगी कि उत्तर "टालमटोल करने वाले थे या नहीं", एक "लघु विचारण" करने के बराबर होगा तथा अभियुक्त के "सहयोग" या "टालमटोल करने" के विषय में जाँच एजेंसी के मत के स्थान पर न्यायालय के मत को रखना होगा तथा इसके उपरांत, न्यायालय को अग्रिम ज़मानत प्रदान करने के प्रश्नों के विषय में निर्णय करना होगा। यह तर्क दुर्गम है तथा स्वीकार योग्य नहीं है।

58. जैसा कि विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा प्रस्तुत किया गया कि यदि अभियोजन/प्रवर्तन निदेशालय द्वारा कड़ी मेहनत से एकत्रित की गई सामग्रियों को

अभियुक्त को दिखाया जाना है, तो इसके भयानक परिणाम होंगे तथा यह अपराधों की जाँच के उद्देश्य मात्र को ही विफल कर देगा, विशेष रूप से सफेदपोश अपराध। यदि अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार किया जाए, तो जाँच एजेंसी को जाँच के दौरान एकत्रित ऐसी सामग्री के संबंध में प्रत्येक अभियुक्त से प्रश्न करने होंगे तथा इस प्रक्रिया में, जाँच एजेंसी उसके द्वारा अपने कर्मचारियों व संसाधनों के माध्यम से कड़ी मेहनत द्वारा एकत्रित साक्ष्य को उजागर कर रही होगी तथा इससे अभियुक्त के लिए साक्षियों को प्रभावित करने का रास्ता खुलने अतिरिक्त उसे साक्ष्य से छेड़छाड़ तथा वित्तीय स्रोत को नष्ट करने का अवसर प्राप्त होगा। यदि अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार किया जाए कि अभियुक्त से सामग्रियों के साथ पूछताछ करनी होगी तथा जाँच एजेंसी को न्यायालय को संतुष्ट करना होगा कि अभियुक्त पूछताछ के दौरान “टालमटोल करने वाला” था, तब न्यायालय को जाँच के मध्यवर्ती चरणों, जैसे कि अभियुक्त की पूछताछ तथा अभियुक्त से प्राप्त उत्तर, पर मामले का सूक्ष्म परीक्षण करने हेतु एक “लघु विचारण” करना होगा तथा यह पता लगाना होगा कि अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर ‘टालमटोल करने वाले’ थे अथवा नहीं या वे ‘संतोषप्रद’ थे अथवा नहीं। अ.नि.अ. अथवा किसी अन्य कानून के अंतर्गत व्यवस्थापिका की यह मंशा कभी नहीं हो सकती थी।

59. अभियुक्त की पूछताछ तथा अभियुक्त से प्राप्त उत्तर तथा यह मत कि अभियुक्त से प्राप्त उत्तर संतोषजनक हैं अथवा टालमटोल करने वाले, विशुद्ध रूप

से जाँच एजेंसी के अधिकार-क्षेत्र में है तथा न्यायालय जाँच के विभिन्न चरणों पर लघु विचारण करके अपना मत प्रतिस्थापित नहीं कर सकता।

60. एक संज्ञेय अपराध की जाँच तथा अभियुक्त से पूछताछ सहित उससे संबंधित विविध चरण अनन्य रूप से जाँच एजेंसी के लिए आरक्षित हैं, जिसकी शक्तियाँ तब तक असीमित हैं जब तक कि जाँच अधिकारी अपनी जाँच करने संबंधी शक्तियों का प्रयोग अच्छी तरह से विधि के प्रावधानों व विधिक सीमाओं के अंदर करता है। धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत प्राप्त शक्ति के उपयोग में, न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप तथा उचित निर्देश जारी कर सकता है जब न्यायालय को यह यक़ीन करा दिया जाए कि जाँच अधिकारी की शक्ति का *नाजायज़* उपयोग किया गया है या जहाँ शक्ति का दुरुपयोग हो तथा दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का पालन न किया गया हो। हालांकि, निर्देश जारी करने तथा जाँच में हस्तक्षेप करने के इस निहित अधिकारिता को उपयोग करने की इस शक्ति का उपयोग केवल विरले मामलों में किया जाता है जहाँ प्रक्रिया का दुरुपयोग या दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का पालन न किया गया हो।

61. *किंग-एमप्रर बनाम ख्वाजा नज़ीर अहमद* **एआईआर 1945 पीसी 18 : 1944 एससीसी ऑनलाइन पीसी 29** में, निम्नानुसार माना गया थाः-

> ".....<u>यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप न करे जो उनके क्षेत्र में हैं तथा उन मामलों में जिनमें विधि द्वारा जाँच का कर्तव्य उन के ऊपर डाला गया है।</u>

जैसा कि उसमें कहा गया है कि भारत में न्यायिक प्राधिकरणों से प्राधिकार की आवश्यकता के बिना पुलिस को एक कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जाँच का विधिक अधिकार है, और जैसा कि माननीय न्यायाधीश सोचते हैं, इसका दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि न्यायालय द्वारा अपनी निहित अधिकारिता के उपयोग द्वारा उन विधिक अधिकारों में हस्तक्षेप को संभव ठहराया जाए। न्यायपालिका एवं पुलिस के कार्य अनुपूरक हैं, एक दूसरे से ऊपर नहीं तथा विधि की उचित देखरेख के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मिश्रण हैं तथा दोनों को अपने-अपने कार्य करने हेतु स्वतंत्र छोड़कर आदेश प्राप्त किया जाए, निश्चित रूप से, यह सदैव दं.प्र.सं. की धारा 491 के अंतर्गत प्रस्तुत ऐसे किसी भी उचित मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप करने के अधीन होगा....."**[रेखांकित किया गया]**

62. *अभिनंदन झा व अन्य बनाम दिनेश मिश्रा* **एआईआर 1968 एससी 117** तथा *बिहार राज्य व अन्य बनाम जे.ए.सी. सल्दान्हा व अन्य* **(1980) 1 एससीसी 554** में उच्चतम न्यायालय के अनुमोदन के साथ *ख्वाजा नज़ीर अहमद* में उपरोक्त निर्णय का उल्लेख किया गया है। जिसमें माना गया है कि किसी अपराध की जाँच ऐसा क्षेत्र है जो अनन्य रूप से पुलिस विभाग के माध्यम से कार्यपालिका हेतु आरक्षित है तथा जिसकी देख-रेख राज्य सरकार में निहित है, *जे.ए.सी. सल्दान्हा* में, निम्नानुसार माना गया थाः-

"**25.** अपराध का पता लगाने व अपराध हेतु दंड के क्षेत्र में कार्यों का सीमा क्षेत्र स्पष्ट रूप से व अच्छे से निर्धारित है। एक अपराध की जाँच ऐसा क्षेत्र है जो अनन्य रूप से पुलिस विभाग के माध्यम से कार्यपालिका हेतु आरक्षित है तथा जिसकी देख-रेख राज्य सरकार में निहित है। कार्यपालिका जिस पर कानून-व्यवस्था की निगरानी का दायित्व है अपराध रोकने के लिए उपकृत है तथा और यदि कथित रूप से कोई अपराध कारित होता है तो अपराध की जाँच करना और अपराधी को विधि के सम्मुख प्रस्तुत करना इसकी बाध्यकारी

जिम्मेदारी है। एक बार जब यह जाँच करती है और अपराध के कारित होने का पता लगा लेती है तो अपराध को साबित करने के उद्देश्य से साक्ष्य एकत्रित करना इसका दायित्व है। एक बार जब यह पूर्ण कर लिया जाता है तथा जाँच अधिकारी संहिता की धारा 190 के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने हेतु अनुरोध करते हुए न्यायालय के सम्मुख रिपोर्ट प्रस्तुत करता है तो इसके दायित्व की पूर्ति हो जाती है। न्यायालय द्वारा किसी अपराध का संज्ञान लिए जाने पर धारा 173(8) में निहित प्रावधान के अधीन पुलिस के जाँच करने के कार्य की पूर्ति हो जाती है, वहाँ से न्यायालय का यह निर्धारित करने का न्यायनिर्णयन संबंधी कार्य प्रारम्भ होता है कि अपराध कारित किया गया था अथवा नहीं और यदि ऐसा है तो यह कि उस व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया गया था अथवा नहीं, जिन पर पुलिस द्वारा न्यायालय को अपनी रिपोर्ट में अपराध का आरोप लगाया गया है तथा न्यायालय की संतुष्टि तक अपराध के साबित होने पर विधि अनुसार पर्याप्त दंड प्रदान करना। अतः पुलिस एवं दंडाधिकारी के मध्य अपराध का पता लगाने व इसके न्याय निर्णयन के क्षेत्र में कार्य को अच्छे से परिभाषित तथा चिह्नित किया गया है। इसको बहुत पहले *किंग एम्पर्र बनाम ख्वाजा नज़ीर अहमद* एआईआर 1944 पीसी 18..... में मान्य किया गया है।"

दुखीश्याम बेनुपनी, सहायक निदेशक, परवर्तन निदेशात्य (एफईआरए) बनाम अरुण कुमार बजोरिया **(1998) 1 एससीसी 52**, *एम.सी. अब्राहम व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य* **(2003) 2 एससीसी 649**, *सुब्रमण्यन स्वामी बनाम निदेशक, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो व अन्य***(2014) 8 एससीसी 682** तथा *डिवाइन रिट्रीट सेंटर बनाम केरल राज्य व अन्य* **(2008) 3 एससीसी 542** में भी इसी मत को दोहराया गया है।

63. अपराध की जाँच करना पुलिस का विशेषाधिकार है तथा दुर्लभ मामलों को छोड़कर, न्यायपालिका को जाँच के सभी क्षेत्रों से बाहर रहना चाहिए।

बिहार राज्य व अन्य बनाम पी.पी. शर्मा, आई ए एस व अन्य **1992 पूरक (1) 222** में, यह कहा गया कि "जाँच अधिकारी कानून का एक हाथ है तथा आपराधिक न्याय प्रदान किए जाने में व कानून-व्यवस्था बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है. .....इसलिए जाँच की प्रक्रिया के क्षेत्र में पुलिस अधिकारी को पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई है तथा एक सफल जाँच हेतु अपने विवेकाधिकार के उपयोग हेतु न्यायालय से स्वतंत्रता प्रदानित है....."। *दुखीश्याम बेनुपती, सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय (एफईआरए) बनाम अरुण कुमार बजोरिया***(1998) 1 एससीसी 52** में, इस न्यायालय ने माना था कि ".....जाँच प्रक्रिया की निगरानी न्यायालय का कार्य नहीं है जब तक ऐसी जाँच विधि के प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है। स्थान, समय तथा प्रश्न व इन प्रश्नों को ऐसे अपराध में लिप्त व्यक्ति के सम्मुख रखने की शैली का निर्णय जाँच एजेंसी पर छोड़ देना चाहिए। एक व्यक्ति को गिरफ्तारी से पूर्ण रूप से बचाने वाला आवरण आदेश उसकी पूछताछ को एक औपचारिकता मात्र बना देगा।"

64. जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रृंखला में कहा गया है कि जाँच एवं इसके पश्चात न्यायनिर्णयन के क्षेत्र में कार्य अच्छी तरह से परिभाषित व चिह्नित हैं। जाँच प्रक्रिया की निगरानी न्यायालय का कार्य नहीं है जब तक जाँच विधि के प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है। जाँच

के मार्ग का निर्धारण जाँच एजेंसी के विवेक पर छोड़ देना चाहिए। यदि न्यायालय जाँच तथा अभियुक्त की पूछताछ के प्रत्येक चरण पर हस्तक्षेप करेगा, तो यह जाँच की सामान्य प्रक्रिया को प्रभावित करेगा। अभियुक्त से पूछताछ में, उससे पूछे गए प्रश्नों की प्रकृति व अभियुक्त से पूछताछ की शैली में अपने तरकी से आगे बढ़ने हेतु जाँच एजेंसी को स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए।

65. यह बोलना एक बात है कि यदि जाँच अधिकारी द्वारा जाँच की शक्ति का दुरुपयोग किया गया हो अथवा दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का पालन न किया गया हो, तो जहाँ शक्ति के दुरुपयोग का स्पष्ट मामला हो वहाँ न्यायालय कार्यवाहियों को रद्द करने हेतु स्वतंत्र है। यह अलग मामला है कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत निहित शक्तियों के उपयोग में उच्च न्यायालय, पीड़ित व्यक्ति के निवेदन पर सदैव उपयुक्त निदेश जारी कर सकता है, यदि उच्च न्यायालय को यह विश्वास करा दिया जाए कि जाँच अधिकारी द्वारा जाँच की शक्ति का दुरुपयोग किया गया है तथा दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है। हालांकि, जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है कि शक्ति का प्रयोग दुर्लभ मामलों में किया जाना चाहिए, जहाँ शक्ति का स्पष्ट दुरुपयोग व दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय-12 के अंतर्गत प्रावधानों के अपालन में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप

की आवश्यकता हो। जाँच के प्रारम्भिक चरणों में जब न्यायालय जमानत या गिरफ्तारी-पूर्व जमानत पर विचार कर रहा हो, तो जाँच व अपराध को साबित करने हेतु साक्ष्य/सामग्रियों के एकत्रीकरण तथा अभियुक्त व साक्षियों से पूछताछ के निर्धारित कार्य में न्यायालय को प्रवेश नहीं करना चाहिए।

66. **प्रतिलिपियों को प्रस्तुत करने का निदेश जारी किया जा सकता है अथवा नहीः-**

याचिकाकर्ता का यह तर्क है कि न्यायालय के सम्मुख वे प्रश्न/पहलु जिन पर याचिकाकर्ता से 19.12.2018, 01.01.2019 व 21.01.2019 को पूछताछ की गई थी नहीं रखे गए हैं तथा प्रवर्तन निदेशालय यह नहीं दर्शा पाया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर किस प्रकार से "टालमटोल वाले" थे। यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि जाँच एजेंसी- प्रवर्तन निदेशालय अभियुक्त से अपनी इच्छित शैली में उत्तर देने की अपेक्षा नहीं कर सकता तथा जाँच एजेंसी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अंतर्गत संरक्षित अभियुक्त के अधिकारों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। क्योंकि अभियुक्त से पूछताछ व उसके सामने रखे गए प्रश्न व अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तर जाँच का भाग हैं जो कि पूर्ण रूप से जाँच अधिकारी के कार्यक्षेत्र में है, न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक उसे संतुष्ट न कर दिया जाए कि जाँच अधिकारी ने किसी विधिक प्रावधान के

उल्लंघन में अपनी जाँच संबंधी शक्तियों का अनुपयुक्त तथा गैरकानूनी उपयोग किया है। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी को अपीलार्थी से पूछे गए प्रश्नों व अपीलार्थी द्वारा दिए गए उत्तरों की प्रतिलिपियों को प्रस्तुत करने का निदेश जारी नहीं किया जा सकता।

<u>विशेष मामलों में अग्रिम जमानत प्रदान करनाः-</u>

67. सामान्यतः, गिरफ्तारी केवल अभियुक्त की उपस्थिति ही नहीं परंतु अन्य विभिन्न उद्देश्य सुनुश्चित करने हेतु जाँच प्रक्रिया का एक भाग है। धारा 438 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति एक असाधारण शक्ति है तथा इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। गिरफ्तारी-पूर्व ज़मानत का विशेषाधिकार केवल विशिष्ट मामलों में प्रदान किया जाना चाहिए। आरोप की प्रकृति व गंभीरता के विषय में तथा याचिकाकर्ता की न्याय से बचकर भागने की संभावना और क्या यह अग्रिम ज़मानत प्रदान करने हेतु यह उचित मामला है यह निर्णय किए जाने वाले अन्य कारकों के संबंध में न्यायालय को प्रदानित न्यायिक विवेकाधिकार का उपयुक्त प्रयोग किया जाना चाहिए। अग्रिम जमानत प्रदान किया जाना कुछ हद तक अपराध की जाँच के क्षेत्र हस्तक्षेप करता है तथा इसलिए, अग्रिम जमानत प्रदान करने हेतु ऐसी शक्ति का उपयोग करते समय न्यायालय को सावधान रहना चाहिए। अग्रिम जमानत को नियम के रूप में नहीं प्रदान किया जाना चाहिए

तथा यह केवल तब प्रदान की जानी चाहिए जब न्यायालय संतुष्ट हो कि उस असाधारण उपचार का सहारा लेने के लिए अपवादात्मक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।

68. अपीलकर्ता की ओर से यह बहस करते हुए काफी तर्क प्रस्तुत किए गए कि अग्रिम ज़मानत भारत के संविधान के अनुच्छेद का एक पहलू है। यह दृढ़तापूर्वक कहा गया कि जब तक कि मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में अभिरक्षा में पूछताछ करना आवश्यक न हो, अग्रिम ज़मानत से मना किया जाना अपीलकर्ता को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार के खंडन के समान होगा।

69. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में यह वर्णित है कि किसी भी व्यक्ति को केवल विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया को छोड़कर, उसके जीवन से या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। हालांकि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के द्वारा प्रदत्त शक्ति असीमित नहीं है तथा अनुच्छेद के बाद वाले भाग से परिमित होती है। "....केवल विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया को छोड़कर।" *मध्यप्रदेश राज्य व अन्य बनाम राम कृष्ण बलोथिया व अन्य* **(1995) 3 एससीसी 221** में, उच्चतम न्यायालय ने यह माना कि अग्रिम ज़मानत का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद- 21 का अंग नहीं है और यह माना किः-

"7. .....यह दलील माननना हमारे लिए कठिन है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 अनुच्छेद- 21 का अभिन्न अंग है। पहले स्थान पर, पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 438 के समान कोई भी प्रावधान नहीं था। विधि आयोग द्वारा अपनी 41 वीं रिपोर्ट में अग्रिम ज़मानत प्रदान करने के प्रावधान की सिफारिश की गई। इसने मानाः-

> "हम यह स्वीकार करते हैं कि यह एक उपयोगी लाभ होगी। हालांकि, हम यह अवश्य कहेंगे कि बहुत असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए।"

इस सिफारिश के आलोक में, धारा 438 को 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता में पहली बार शामिल किया गया था।विधि आयोग की सावधानीपूर्ण सिफारिश को देखते हुए, अग्रिम जमानत प्रदान करने की शक्ति केवल सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को प्रदान की गई है। साथ ही, अग्रिम जमानत को अधिकार के रूप में नहीं प्रदान किया जा सकता है। यह आवश्यक रूप से संविधान के लागू होने के काफी समय बाद प्रदत्त किया गया वैधानिक अधिकार है। यह संविधान के अनुच्छेद-21 का आवश्यक अंग नहीं माना जा सकता और इसका अपराध की कुछ विशिष्ट श्रेणियों पर लागू न होना अनुच्छेद 21 की अवहेलना नहीं मानी जा सकती।" **[रेखांकित किया गया]**

70. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि धारा 438 दं.प्र.सं. के समावेशन के पीछे का विधायी उद्देश्य व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता की रक्षा करना है तथा उसे शर्मिंदा होने की संभावना तथा अनावश्यक पुलिस अभिरक्षा से बचाना है। हालांकि, न्यायालय को यह भी ध्यान रखना होगा कि एक आपराधिक कृत्य केवल एक व्यक्ति के विरुद्ध अपराध मात्र नहीं है, परंतु व्यापक सामाजिक हित दाव पर है। अतः, दो अधिकारों, किसी व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता की सुरक्षा तथा सामाजिक हित की रक्षा, के मध्य एक सूक्ष्म संतुलन स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अग्रिम जमानत प्रदान करने से इंकार किया जाना

भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा अपीलार्थी को प्राप्त अधिकारों से इंकार किए जाने के बराबर है।

71. विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर, यह जाँच एजेंसी के ऊपर है कि वह केवल तब अभियुक्त का सामग्री से सामना कराए जब वह अभिरक्षा में है। यह दलील प्रस्तुत की गई कि अ.नि.अ. की धारा 19 के अंतर्गत वैधानिक अधिकारों में जाँच अधिकारी की गिरफ्तार करने की शक्ति के मनमाने उपयोग के विरुद्ध अंदरूनी रूप से निर्मित रक्षा उपाय हैं। यह तर्क प्रस्तुत करना कि अभिरक्षा में पूछताछ, पूछताछ की एक स्वीकृत शैली है जो न केवल स्वीकार्य है परंतु अधिक प्रभावी भी मानी गई है, विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा *सीबीआई निमित्त राज्य बनाम अनिल शर्मा* **(1997) 7 एससीसी 187**, *सुधीर बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य* **(2016) 1 एससीसी 146**, तथा *सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय बनाम हसन अली खां* **(2011) 12 एससीसी 684** पर भरोसा किया गया है।

72. सामान्यतः, गिरफ्तारी जाँच की प्रक्रिया का अंग है जिसका लक्ष्य विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त ऐसी सूचना प्रदान करे जो महत्वपूर्ण तथ्यों व प्रासंगिक जानकारी की खोज की ओर ले जाए। अग्रिम जमानत प्रदान किया जाना जाँच को क्षति पहुँचा सकता है। गिरफ्तारी-पूर्व जमानत व्यक्ति के निजी स्वतंत्रता के अधिकार एवं जाँच एजेंसी के

अब तक एकत्रित सामग्री के संबंध में तथा और अधिक जानकारी एकत्र करने हेतु, जिससे प्रासंगिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है, अभियुक्त से पूछताछ करने के अधिकार के मध्य एक संतुलन बनानने के लिए है। *सीबीआई द्वारा प्रतिनिधित्व राज्य बनाम अनिल शर्मा* **(1997) 7 एससीसी 187** में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार मानाः-

> "**6.** हम सीबीआई के इस तर्क में बल पाते हैं कि संहिता की धारा 438 के अंतर्गत अनुकूल आदेश का आश्रय प्राप्त संदिग्ध से पूछताछ की तुलना में अभिरक्षा में पूछताछ गुणात्मक रूप से अधिक उत्तर प्राप्ति हेतु उन्मुख है। एक ऐसे मामले में बहुत सी उपयोगी जानकारी तथा छुपा ली जाने वाली ऐसी सामग्रियों को निकालने हेतु संदिग्ध व्यक्ति से प्रभावी पूछताछ अत्यधिक महत्व की होती है। यदि पूछताछ के समय संदिग्ध व्यक्ति को पता होगा कि वह गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के एक आदेश द्वारा सुरक्षित व बचा हुआ है तो ऐसी पूछताछ में सफलता हाथ से निकल जाएगी। बहुत बार ऐसी एक परिस्थिति में पूछताछ मात्र एक औपचारिकता बन कर रह जाएगी। इस तर्क का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए कि अभिरक्षा में पूछताछ व्यक्ति पर थर्ड डिग्री उपायों के इस्तेमाल के खतरे से भरी है, क्योंकि, ऐसा तर्क सभी आपराधिक मामलों में सभी अभियुक्तों द्वारा उपयोग किया जा सकता है। न्यायालय को यह मान कर चलना होगा कि जिम्मेदार पुलिस अधिकारी स्वयं एक जिम्मेदार शैली में व्यवहार करेगें तथा जिन पर अपराधों को खोज निकालने का कार्य सौंपा गया है वे अपराधी जैसा आचरण नहीं करेगें।"

73. यह मानते हुए कि गिरफ्तार करना विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जाँच का एक भाग है, *आद्री धरण दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य* **(2005) 4 एससीसी 303** में, निम्नानुसार कहा गया :-

"**19.** सामान्यतः, गिरफ्तार करना विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जाँच का एक भाग है। अभियुक्त से अपराध के उद्देश्य, तैयारी, अंजाम देने व इसके बाद के परिणाम तथा अन्य व्यक्तियों, यदि कोई हो, का अपराध से संबंध के विषय में विभिन्न पहलुओं के संबंध में विस्तृत पूछताछ की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त ऐसी जानकारी प्रदान करे जिससे महत्वपूर्ण तथ्य उजागर हों। जाँच को बिना किसी बाधा के आगे बढ़ाने के लिए तथा साक्षियों व अपराध के पीड़ित से संबंधित व्यक्तियों की सुरक्षा हेतु, उसकी अनुपस्थिति से रोकने हेतु, क्षेत्र में कानून व्यवस्था बनाए रखने हेतु उसकी स्वतंत्रता को कम करने की आवश्यकता हो सकती है। इन या अन्य कारणों से, गिरफ्तारी जाँच की प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सकती है। प्रस्तावित गिरफ्तारी की वैधानिकता को संहिता की धारा 438 के अंतर्गत एक प्रार्थनापत्र में नहीं जाँचा जा सकता। जाँचकर्ता की भूमिका अच्छी तरह से परिभाषित है तथा जाँच की प्रक्रिया में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की क्षेत्राधिकारात्मक दायरा सीमित है। न्यायालय सामान्यतः अपराध की जाँच में या एक संज्ञेय अपराध में अभियुक्त की गिरफ्तारी में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि संहिता की धारा 438 के अंतर्गत किसी आवेदन के निपटान के दौरान गिरफ्तारी रोकने वाला एक अंतरिम आदेश पारित किया जाता है, तो यह जाँच में हस्तक्षेप करने के बराबर होगा, जो कि किसी भी दशा में, संहिता की धारा 438 के अंतर्गत नहीं किया जा सकता है।"

74. *सिद्धाराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य* **(2011) 1 एससीसी 694** में, सर्वोच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत का निपटान करते समय विचार करने योग्य कारक व मानदण्ड निर्धारित किए हैं। यह माना गया था कि गिरफ्तार करने से पहले आरोप की प्रकृति व गंभीरता तथा अभियुक्त की सटीक भूमिका को ठीक से समझना चाहिए तथा यह कि न्यायालय को अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध सामग्री का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना चाहिए। यह भी माना गया था कि न्यायालय को इस पर भी विचार करना चाहिए कि कहीं याचिकाकर्ता

को गिरफ्तार कर उसको चोट पहुँचाने या शर्मिंदा करने के एकमात्र उद्देश्य से तो आरोप नहीं लगाए गए हैं।

75. *सिद्धाराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे* व अन्य निर्णयों के उल्लेख के उपरांत तथा यह मानते हुए कि अग्रिम जमानत केवल अपवादजनक मामलों में ही प्रदान की जा सकती है, *जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य व अन्य* **(2012) 4 एससीसी 379**, में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार माना:-

> "**19.** एक गंभीर अपराध में अग्रिम जमानत प्रदान करने हेतु मानदण्डों की पूर्ति किया जाना आवश्यक है तथा इसके अतिरिक्त ऐसी राहत प्रदान करते समय, न्यायालय को इसके कारणों को दर्ज करना होगा। अग्रिम जमानत केवल अपवादजनक परिस्थितियों में प्रदान की जा सकती है जहाँ न्यायालय का प्रथम दृष्ट्या मत यह हो कि याचिकाकर्ता को अपराध में झूठा फँसाया गया है तथा वह अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा। (देखें *डी.के. गणेश बाबू बनाम पी.टी. मनोकरण* (2007) 4 एससीसी 434, *माहाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद साजिद हुसैन मोहम्मद एस. हुसैन* (2008) 1 एससीसी 213 तथा *भारत संघ बनाम पदम नारायण अग्रवाल* (2008) 13 एससीसी 305)।"

<u>आर्थिक अपराधः-</u>

76. एक असाधारण उपचार होने के कारण धारा 438 दं.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति का उपयोग संयम से किया जाए; इससे भी अधिक, आर्थिक अपराधों के मामले में। आर्थिक अपराध एक भिन्न दर्जे के होते हैं क्योंकि वे समाज के आर्थिक ताने बाने को प्रभावित करते हैं। *प्रवर्तन निदेशालय बनाम अशोक कुमार जैन* **(1998) 2**

एससीसी 105 में, यह माना गया था कि आर्थिक अपराधों में, अभियुक्त अग्रिम जमानत का अधिकारी नहीं है।

77. विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि "अनुसूचित अपराध" तथा "अर्थशोधन का अपराध" एक दूसरे से स्वतंत्र है तथा अ.नि.अ. के अर्थशोधन के अपराध पर लागू होने वाले एक विशेष कानून होने के कारण यह अग्रिम जमानत प्रदान करने हेतु एक उचित मामला नहीं है। विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने निवेदन प्रस्तुत किया कि अर्थशोधन अत्यधिक सुयोजित व सुविचारित तरीके से किया गया आर्थिक अपराध होने के कारण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था व वित्तीय अखंडता के लिए एक गंभीर खतरा उत्पन्न करता है तथा शोधन व वित्तीय स्रोत को उजागर करने के लिए, याचिकाकर्ता से अभिरक्षा में पूछताछ करना आवश्यक है।

78. यह देखते हुए कि आर्थिक अपराध एक सुविचारित तरीके से समाज के प्रति इसके परिणामों से बेपरवाह होकर व्यक्तिगत लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता है, *गुजरात राज्य बनाम मोहनलाल जीतामलजी पोड़वाल व अन्य* **(1987) 2 एससीसी 364** में, निम्नानुसार कहा गया थाः-

> "5. .....यदि उन आर्थिक अपराधियों को जो राज्य की अर्थव्यवस्था को बरबाद करते हैं न्याय के सम्मुख नहीं लाया जाता तो संपूर्ण समुदाय पीड़ित होता है। एक कत्ल भावनाओं को भड़काए जाने पर क्षणिक आवेश में आने पर हो सकता है। एक आर्थिक अपराध शांतिपूर्ण गणना व सुविचारित तरीके के साथ समाज के प्रति

परिणामों से बेपरवाह होकर व्यक्तिगत लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता है। समाजिक हित के प्रति बेपरवाही केवल उन हल्कों द्वारा व्यक्त की जा सकती है जो न्याय को निष्पक्ष रूप से संचालित करने वाले तंत्र में समाज के विश्वास व श्रद्धा को त्यागने के मूल्य पर निंदा के डर के बिना सफेदपोश अपराधों को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व राष्ट्रीय हित को होने वाली क्षति से अनभिज्ञ हो अनुमति प्रदान करने वाली दृष्टि से देखते हैं....."

79. यह मानते हुए कि आर्थिक अपराध एक अलग दर्जे के हैं तथा जमानत के मामले में उनके प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण की आवश्यकता है, *वाई.एस. जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई* **(2013) 7 एससीसी 439** में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार कहा :-

"**34.** आर्थिक अपराध एक अलग दर्जे के हैं तथा जमानत के मामले में उनके प्रति एक भिन्न दृष्टिकोण की आवश्यकता है। आर्थिक अपराध को, जिनमें गहरा षड़यंत्र तथा सरकारी निधि का भारी नुकसान हो, गंभीरता से देखने की आवश्यकता है तथा व्यापक रूप में देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले तथा इस कारण से देश के आर्थिक स्वास्थ के प्रति गंभीर खतरा उत्पन्न करने वाले गंभीर अपराधों के रूप में देखने की आवश्यकता है।

35. जमानत प्रदान करते समय, न्यायालय को आरोपों की प्रकृति, उसके समर्थन में साक्ष्यों की प्रकृति, दोषसिद्धि होने पर दंड की कठोरता, अभियुक्त का चरित्र, अभियुक्त के प्रति विशेष परिस्थितियाँ, विचारण में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने की तर्क संगत संभावना, साक्षियों से छेड़छाड़ की तर्कसंगत आशंका, जनता/राज्य का व्यापक हित तथा अन्य समान विचारों को ध्यान में रखना होगा।" **[रेखांकित किया गया]**

80. बम्बई उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के आदेश, जिसमें उन्होंने प्रत्यर्थी को अग्रिम जमानत प्रदान की थी, के विरुद्ध प्रवर्तन निदेशालय की एक अपील

पर सुनवाई के दौरान *प्रवर्तन अधिकारी, टेड, बम्बई बनाम बहेर चंद टिकाजी बोरा व अन्य* **(1999) 5 एससीसी 720** में *दुखीश्याम बेनुपानी, सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय (एफईआरए) बनाम अरुण कुमार बजोरिआ* **(1998) 1 एससीसी 52** का हवाला देते हुए, उच्चतम न्यायालय ने एकल न्यायाधीश के जमानत प्रदान करने वाले आदेश को रद्द कर दिया था।

81. जाँच के चरण पर अग्रिम जमानत प्रदान किया जाना जाँच एजेंसी को अभियुक्त से पूछताछ में तथा उपयोगी जानकारी व सामग्री, जो कि छुपाई जा सकती थी, एकत्र करने में निराश कर सकता है। ऐसी पूछताछ में सफलता हाथ से निकल सकती है यदि अभियुक्त को यह मालूम हो कि वह न्यायालय के आदेश द्वारा सुरक्षित है। विशेष रूप से आर्थिक अपराधों में अग्रिम जमानत प्रदान किया जाना निश्चित रूप से प्रभावी जाँच को नुकसान पहुँचाएगा। प्रत्यर्थी- प्रवर्तन निदेशालय द्वारा एकत्रित की गई सामग्रियों को ध्यान में रखकर तथा जाँच के चरण पर विचार करते हुए, हमारा मत यह है कि यह अग्रिम जमानत प्रदान करने हेतु एक उपयुक्त मामला नहीं है।

82. अर्थशोधन के मामले में, जिसमें "स्थापन", "लेयरिंग अर्थात स्रोत को छुपाने हेतु धन को अन्य संस्थानों में स्थानांतरित करना" तथा "इंटैरोगेशन अर्थात विभिन्न संपत्तियों को अर्जित करने हेतु उपयोग की गई पूंजी", शामिल है, वहाँ एक व्यवस्थित व विश्लेषणात्मक जाँच की आवश्यकता है, जो अत्यधिक लाभकारी

होगी। जैसा कि *अनिल शर्मा* वाले मामले में माना गया, ऐसी जाँच में सफलता हाथ से निकल जाएगी यदि अभियुक्त को मालूम होगा कि वह एक गिरफ्तारी-पूर्व जमानत आदेश द्वारा सुरक्षित है। धारा 438 दं.प्र.सं. को केवल अपवादजनक मामलों में प्रयोग किया जाए जहाँ अभिकथित मामला तुच्छ या आधारहीन हो। प्रस्तुत मामले में, अपराध के मुनाफे के शोधन का आरोप है। प्रवर्तन निदेशालय का दावा है कि उसके पास विभिन्न स्रोतों, जिसमें विदेशी बैंक शामिल हैं, से विशेष जानकारियाँ मौजूद हैं। लैटर रोगैट्री (साक्ष्य हेतु प्रार्थना पत्र) भी जारी किया जाना बताया गया है तथा विभाग को कुछ उत्तर भी प्राप्त हुआ है। आरोपों की प्रकृति तथा जाँच के चरण को ध्यान में रखते हुए, हमारे मतानुसार, जाँच एजेंसी को जाँच प्रक्रिया में पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी होगी। हालांकि हम विद्वान एकल न्यायाधीश के उस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते हैं जिसके अनुसार उन्होंने प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्र का उल्लेख किया था, हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप हेतु कोई आधार नहीं पाते हैं। मामले के तथ्यों व परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हमारी राय में, याचिकाकर्ता को अग्रिम जमानत प्रदान करना जाँच को नुकसान पहुँचाएगा तथा यह याचिकाकर्ता को जमानत प्रदान करने के विवेक का उपयोग करने हेतु उचित मामला नहीं है।

83. परिणामतः, याचिका को खारिज किया जाता है। यह याचिकाकर्ता पर है कि वह विधि अनुसार अपना उपाय करे। जैसे और जब नियमित जमानत हेतु याचिका

दाखिल की जाती है, तो उस पर इस निर्णय व उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में की गई टिप्पणियों से प्रभावित हुए बिना विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा उसके अपने गुणागुणों के आधार पर व विधि अनुसार विचार किया जाए।

.....न्या.
[आर. भानुमथी]

.....न्या.
[ए.एस. बोपन्ना]

नई दिल्ली;
05 सितम्बर, 2019

अस्वीकरण: देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी|